सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 37; अंक : 4
जुलाई, 2004

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- प्राणायाम का अधिकारी कौन ? (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 7
- हठ योग का हठी : योगी संसार सिंह – गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज 9
- सद्गुरु–शरणागति ही सिद्धयोग की साधना है – डॉ० विजयसिंह 14
- भजन महिमा – कृष्ण कुमार पाण्डेय 16
- रामकृष्ण परमहंस की अमृत वाणी 19
- सिद्धयोगी के संकल्प से ट्रेन का रुकना-चलना – केशव देव उपाध्याय 22
- हिमालय के अमर महायोगी – पूर्णचन्द्र 29
- गायत्री की विशेषता – प० केशीजी मिश्र 36
- स्वास्थ्य चर्चा 40

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37 अंक 4	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	जुलाई 2004

नीहारहारघनसारसुधाकराभां

कल्याणदां कनकचम्पकदामभूषाम्।

उत्तुंगपीनकुचकुम्भमनोहरांगी

वाणीं नमामि मनसा वचसा विभूत्यै।।

अर्थात्

हिम, मुक्ताहार, कपूर तथा चन्द्रमा की आभा के समान शुभ्र कान्तिवाली, कल्याण प्रदान करने वाली, सुवर्णसदृश पीत चम्पक पुष्पों की माला से विभूषित, उठे हुए सुपुष्ट कुचकुम्भों से मनहर अंग वाली वाणी अर्थात् सरस्वती देवी को मैं विभूति (अष्टविध ऐश्वर्य एवं निःश्रेयस्) के लिए मन और वाणी द्वारा नमस्कार करता हूँ।

अमृतकण

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

दुष्टजनों की विद्या विवाद के लिए होती है, उनका धन मद, विलासिता, स्वार्थपूर्ति के लिए होता है और शक्ति शोषण–उत्पीड़न के लिए होती है, परन्तु साधु पुरुषों की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति आर्त प्राणियों की रक्षा के लिए होती है।

❊ ❊ ❊

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदामतिशंका च त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।

पराये का हक छीन लेना, परस्त्री–संसर्ग और अपने हित मित्रों से अत्यधिक संशकित रहना–ये तीन दोष सर्वनाश करने वाले हैं।

❊ ❊ ❊

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यस्य ते हितमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तम्।।

देवता लोग चरवाहे की भाँति डंडा लेकर हमारी रक्षा थोड़े करते हैं। वे तो जिसका भला करना चाहते हैं उसे उत्तम बुद्धि (समझ) दे देते हैं।

❊ ❊ ❊

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः।।

वेद शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी जिनका सांसारिक सुखों में राग (प्रेम) बना हुआ है, उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है। वे तो कुत्ते, घोड़े और सूअर जैसे हैं।

❊ ❊ ❊

❑ विशेष लेख

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग–साधन करने की इच्छा वाले व्यक्ति अधिकतर योगाश्रमों में आकर प्राणायाम सीखने की अभिलाषा प्रकट किया करते हैं। यद्यपि योग सार्वभौम विद्या है और हम समझते हैं संसार का प्रत्येक प्राणी योग का अधिकारी है, किन्तु विचारने वाली बात केवल मात्र एक है और वह यह है कि अधिकारी शब्द का अर्थ क्या है ? और कौन किस प्रकार से योग का अधिकारी हो सकता है ? हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है:

यत्र मनोलीयते तत्र प्राणो लीयते,
यत्र प्रणोलीयते तत्र मनो लीयते।

अर्थात् जहाँ मन लीन होता है वहाँ प्राण भी लय हो जाया करता है। और जहाँ प्राण लय होता है वहाँ मन लय हो जाता है। प्राण और मन दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है। साधक चाहे प्राण की साधना करे, या मन की साधना करे वह अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर ही सकता है। फिर क्या आवश्यकता है कि जो लोग प्राणायाम के अधिकारी नहीं हैं वे लोग प्राणायाम जैसी कठिन विद्या के पीछे पड़ें ? और अनाधिकारिता से हानियाँ उठायें ? इससे अच्छा यह है कि राजयोग की साधना में सरलता से प्राप्त हो जाने वाली एवं मन की एकाग्रता से सम्बन्ध रखने वाली साधनाओं को करें एवं अपने परम लक्ष्य को पहुँचे। शिवसंहिता में भगवान शिव ने योग के उत्तम, मध्यम एवं निकृष्ट अधिकारियों का बिल्कुल स्पष्ट रूप से वर्णन किया है उनमें से उत्कृष्ट उत्तमोत्तम अधिकारी ही प्राणायाम का अधिकारी हो सकता है। योग विद्या में अभिरुचि रखने वाले साधक कौन, किस प्रकार से इस मार्ग में प्रवेश करें, उनको भगवान शिव के शब्दों में पढ़िये और निश्चय कीजिये कि आप योग विद्या में किस प्रकार की साधन के अधिकारी है।

तीन प्रकार के योगाधिकारी

(१) **मृदु साधक**–मन्त्रयोग का अधिकारी

मन्दोत्साही सुसं मूढो, व्याधिस्थो गुरुदूषकः।
लोभी पापमतिश्चैव, बह्वाशी विनताश्रयः।।
चपलः कातरो योगी, पराधीनोऽति निष्ठुरः।
मंदाचारो मंदवीर्यो, ज्ञातव्यो मृदुमानवः।।
द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धि रेतस्य यत्नतः परम्।
मन्त्रयोगाधिकारी स, ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम्।।

अर्थात्, मंदोत्साही, तमसावृत्त, मूढ़चित्त वाला, आधिव्याधियों से ग्रसित, गुरुनिन्दक, लोभी, जिसके मन, बुद्धि में हर समय पाप–वासनायें रहती हों, बहुत अधिक भोजन करने वाला, स्त्री का वंशानुवर्ती, कठोर बोलने वाला, मन्द कर्मों वाला, मंद वीर्य वाला, इस प्रकार का जो साधक है वह मंदाधिकारी है, ऐसा साधक जो मंत्रयोग का अधिकारी है, जिसमें ये लक्षण मिलते हों, उसको चाहिए कि वह साधक स्वास्थ्य परायण हो जाय। स्वास्थ्य परायण होकर ही समाधि प्राप्त करने का प्रयत्न करे। स्वास्थ्य परायण होकर अवश्य ही समाधि को पा सकता है। क्योंकि इस विषय में शास्त्र की आज्ञा है कि–

'स्वाध्यायाद्योगमासीत, योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोग संपत्या, परमात्मा प्रकाशते।।

ऐसे साधक को मन्त्रयोग प्राप्त करके उसके जप में लग जाना चाहिए। जब जप करता–करता थक जाय तब ध्यानाभ्यास में लग जाय। इस प्रकार जप और ध्यान परायण हुआ व्यक्ति समाधि के द्वार तक पहुँच जाया करता है। ऐसा साधक मन्त्रयोग का ही अधिकारी हो सकता है।

(२) अधिमात्र साधक–हठयोग का अधिकारी।

'स्थिरबुद्धिर्लये युक्तः स्वाधीनो वीर्यवानपि।
महाशयो दयायुक्तः क्षमावान् सत्यवानपि।।
शूरो वयस्थः श्रद्धावान्, गुरुपादाब्जपूजकः।
योगाभ्यासरतश्चैव ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः।।
एतस्य सिद्धिः षड्वर्षैर्भवेदभ्यास योगतः।
एतस्मै दीयते योगो, हठयोगश्च सांगतः।।

अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला, जिसके निश्चय बार–बार बदलते न रहते हों, लय योग के साधनों में सामर्थ्य रखता हो, सब प्रकार से स्वतन्त्र हो किसी भी प्रकार की किसी की अधीनता न हो, वीर्यवान हो और जिसके विचार ऊँचे हों, प्राणीमात्र पर दया की भावना मन में जगती हो, क्षमाशील हो, समाधियोग में निवृत्ति हो, सत्य जिसके मन में वास करता हो, श्री गुरुदेव के चरणारविन्द का पुजारी हो, शूर हो, योगाभ्यास में पूरी–पूरी लगन हो, इस साधक को अधिमात्र साधक कहते हैं। ऐसा साधक हठयोग का अधिकारी है। हठाभ्यासतर यह साधक जल्दी से जल्दी उन्नति को प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त आगे जो लक्षण बतलाये जा रहे हैं, वह उत्तम,अधिकारी के लक्षण हैं।

(३) उत्तम साधक–सर्वयोगाधिकारी

महावीर्यन्वितोत्साही मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यासशीलश्च, निर्मोहश्च निराकुलः।।
नवयौवन संपन्नो मिताहारी जितेन्द्रियः।

निर्भयश्च शुचिर्दक्षो दातासर्वजनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरोधीम न् यथेच्छायस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मधारी च गुप्तचेष्टः प्रियं वदः।।
शास्त्र विश्वास सम्पन्नो देवतागुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च महाव्याधि विवर्जितः।।
अधिमात्रतरो ज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः।
त्रिभिस्सवत्सरैः सिद्धिरेतस्यनात्रसंशयः।।
सर्वयोगाधिकारी स, नात्र कार्या विचारणा।।

अर्थात्, महावीर्यवान्, उत्साहयुक्त, स्वरूपवान्, शूरता सम्पन्न, शास्त्रज्ञ, अभ्यासशील, मोह से रहित, आकुलता रहित अर्थात् सावधान, नवयौवन सम्पन्न, मिताहारी, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, निर्भय, पवित्र आचार वाला, चतुर, दानशील, शरणागत पालक, स्थिर चित्त बुद्धिमान, सन्तोषयुक्त, क्षमावान, शीलवान, धार्मिक कर्मों को गोप्य रखने वाला, प्रियसत्यवादी, शास्त्र में विश्वास, देवता और गुरुपूजक, जनसंग रहित, महाव्याधिरहित ऐसे गुण जिसमें हों वह सर्वयोग का साधक है। ऐसे साधक को तीन वर्ष में ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है कि वह साधक सर्वयोग का अधिकारी है। ऐसे साधक को श्री गुरुदेव जी समस्त योग का उपदेश कर देते हैं। इसमें विस्तार करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

इस प्रकार से योग के विभिन्न अधिकारी साधक का वर्णन शिवसंहिता में भगवान शिव ने किया है। योग दर्शन में भी अधिकार– भेद भली प्रकार समझाया गया है। भगवान् पतंजलि देव ने इस प्रकार के अधिकारियों के समझाने के लिये तीन सूत्रों का उल्लेख किया। उनके विशेष व्याख्यान की इस लेख में आवश्यकता नहीं है; किन्तु फिर भी संकेत मात्र में यहाँ लिख देना उचित समझता हूँ।

'श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।'

अर्थात्, जो व्यक्ति श्रद्धावीर्य के द्वारा स्मृतिसमाधि को पैदा करके प्रज्ञापूर्वक आगे बढ़ता है। उसका रास्ता अन्तराय रहित हो जाता है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये व्यासदेव जी महाराज निम्नांकित पंक्तियों का उपदेश करते हैं। पढ़िये व्यास–भाष्यः

उपायप्रत्ययो योगिनां भवति, श्रद्धा-चेतस, सम्प्रसादः, सा हित जननीव कल्याणी योगिनं पाति, तस्य ही श्रद्धधानस्य विवेकार्थनो वीर्यभुपजायते, समुपजातवीर्य्यस्य स्मृतिरुपतिष्ठते, स्मृत्युपस्थाने च चित्तमनाकुलं समाधीयते, समाहितचित्तस्यप्रज्ञाविवेक उपावर्त्तते, येन ययायद्वस्तु जानाति तदभ्यासात् तद्विषयाच्च वैराग्यादसम्प्रज्ञातः समाधिर्भवति।।२०।।

उपरोक्त सूत्र से पहले वाले सूत्र में भव प्रत्यय वाले योगियों का वर्णन किया जा चुका है; जिसका अर्थ होता है—जन्म से ही योग की प्रतीति।

अब उपाय प्रत्यय वाले योगियों का वर्णन करते हैं। उपाय प्रत्यय वाले योगी श्रद्धा वीर्य

स्मृति समाधि के बल से बढ़ते हैं। श्रद्धा–चित्त की प्रसन्नता को कहते हैं व श्रद्धा माता की तरह से योगी की रक्षा करती है। ज्यों–ज्यों विवेकार्थी योगी श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ता है त्यों–त्यों उसके अन्दर दृढ़ता बढ़ती चली जाती है और उस दृढ़ता से स्मृति का उपस्थान हो जाने के बाद बिना ही किसी परिश्रम के चित्त समाधिस्थ हो जाता है और समाहित चित्त हो जाने के बाद योगी का प्रज्ञा–विवेक बढ़ जाया करता है, जिससे योगी वस्तु की यथार्थता को यथावत् जान लेता है। अतः ऊपर जिस प्रकार का अधिकारी भेद का वर्णन किया गया है उसके अनुसार अधिमात्रतम उत्तमाधिकारी ही हठयोग का अधिकारी हो सकता है। वही प्राणायादि कर सकता है। प्राणायाम करने वाला साधक महावीर्यवान– धैर्यवान एवं परमोत्साही होना चाहिए तभी साधना की सफलता को पा सकता है। इस विषय में पतंजलि देव स्वयं उपदेश करते हैं:

'सतु दीर्घकालनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितोदृढ़भूमिः।'

अर्थात्, जो साधक अपने अभ्यास को लम्बे समय तक लगातार एवं आदर पूर्वक करते हैं वे ही अपने लक्ष्य को पूर्णरूपेण प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोई साधक प्राणायाम से होने वाले फलों को दृष्टिपथ में रख करके इस साधन मार्ग में लगता है और प्राणायाम सम्बन्धी यथार्थ नियमों का पालन नहीं कर पाता तो वह अन्तरायों से अभिभूत होकर अपने लक्ष्य से च्युत हो जाया करता है। योग–विद्या सार्वभौम विद्या है किन्तु हमारे आचार्यों ने अधिकार भेद अवश्य माना है। अधिकार भेद का सम्बन्ध मनुष्य की कार्यारम्भण सामर्थ्य अर्थात् मनुष्य की योग्यता से है कि वह किस साधना को अपनी योग्यतापूर्वक व जल्दी कर सकता है। इस बात को केवल मात्र उसके शिक्षक सर्वसामर्थ्यवान् गुरुदेव ही समझेंगे एवं उसके बलाबल को देखकर के साधन प्रदान करेंगे, जिससे वह अपने लक्ष्य को सफलता पूर्वक प्राप्त कर लेगा।

* * *

रुद्राभिषेक महायज्ञ का आयोजन

समस्त सहधर्मी गुरुभाई-बहिनों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी श्री सिद्धगुफा संवाई (आगरा) में श्री रूद्राभिषेक महायज्ञ का आयोजन मंगलवार ६ जुलाई से शुक्रवार १६ जुलाई २००४ तक हो रहा है। पूर्णाहुति १६ जुलाई को होगी।

सभी श्रद्धालुजन इस पवित्र आयोजन में सहभागी होने के लिए सादर आमन्त्रित हैं। अधिकाधिक संख्या में अपने बाल-गोपालों और ईष्ट-मित्रों सहित धर्म लाभ हेतु उपस्थित होवें।

—प्रबन्धक

''ध्यानात्कर्मफल त्यागः''

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

श्री मद्भगवद्गीता में कर्म, कर्मबन्धन, निष्काम कर्म एवं कर्मफल त्याग आदि विषयों की विस्तृत व्याख्या मिलती है। कर्म संस्कारों को नष्ट किये बिना न तो शान्ति मिलती है और न जन्म मरण से मुक्ति। कर्म संस्कार ही मनुष्य को नाना योनियों में भटकने के लिये बाध्य करते हैं। कर्म की गति बहुत गहन है, बड़े–बड़े मनीषी भी कर्म विधान के रहस्य को नहीं समझ पाते।

मानव जीवन में कर्म संस्कार, तदनुसार वृत्ति तत्पश्चात् कर्म का क्रम अनवरत बना रहता है। ऐसी क्रिया जिसका शुभ और अशुभ से सम्बन्ध हो, कर्म कहलाता है। गीता के अनुसार कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिये भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इसलिये कर्म न करने से मनुष्य 'निष्कर्म' नहीं बन सकता। कर्म करते हुये शुभाशुभ के परिणाम को न भोगे ऐसा उपाय करना चाहिये। शुभाशुभ कर्म को भगवदर्पण करने से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। कर्म को भगवान् के अर्पण करने के लिए वाणी की नहीं, ध्यान की आवश्यकता होती है। इसके लिए भगवान् ने सर्वप्रथम ध्यानाभ्यास की बात कही है। भगवान् कहते हैं–

श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात्कर्मफल त्यागः त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।

अर्थात् अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है ! तात्विक बात यह है कि पहले अभ्यास आवश्यक है। स्थिति के लिये बार–बार प्रयत्न करने को अभ्यास कहते हैं। जब अभ्यास परिपक्व हो जाता है तो आत्मज्ञान का मार्ग खुलता है। **''ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते''** ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है। दूसरे शब्दों में ज्ञानमयवृत्ति से ध्यान होने पर ध्यान जमने लगता है। इसलिये ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ कहा गया है। ध्यान की परिपक्वावस्था से कर्मफल का त्याग होता है और कर्मफल के त्याग से अखण्ड शान्ति मिलती है।

ध्यान के दृढ़तर अभ्यास से चित्त में पड़े कर्मफल के बीज नष्ट होते जाते हैं। ध्यान योग का लक्ष्य चित्त में रहने वाले क्लेशों तथा तज्जन्य क्लेशों की निवृत्ति है। क्लेशों की जड़ चित्त में बहुत गहरी एवं सूक्ष्म है। इसकी निवृत्ति के लिये ध्यान योग अपरिहार्य है। इसलिये भगवान् ने कहा है–

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फलेसक्तो निबध्यते।।

अर्थात् ध्यान योगी योग से युक्त हुआ कर्मफल को त्यागकर नैष्ठिकी शान्ति को पा जाता है जबकि उपयोगी कर्म में आसक्त होने के कारण तथा फल में आसक्ति होने के कारण बँध जाता है। ध्यानयोगी का **'कर्मफल त्याग'** स्वमेव हो जाता है।

ऋतुं प्राप्य यथा वृक्षः पत्रं त्यजति निःस्पृहः।
तत्वं प्राप्य तथा योगी त्यज्यते कर्मभिः।।

अर्थात् जिस प्रकार से पतझड़ के आने पर वृक्ष से पत्ते स्वयमेव गिर जाते हैं ऐसे ही योगी को कर्म स्वयमेव छोड़ देते है। ध्यानयोगी की कामनायें नष्ट होती जाती है। कामनाओं को नष्ट करना ही साधक का पुरुषार्थ है। कामनाओं से मनुष्य का ज्ञान ढका रहता है। ध्यान योग से स्वतः ही ज्ञान का प्रकाश बढ़ने लगता है। चित्त शुद्धि एवं कर्मसंस्कार को क्षय करने का यह एकमात्र उपाय है। ध्यानयोगी बुद्वियुक्त कहलाता है उसके लिये भगवान् ने–

'बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते'

अर्थात् बुद्धि युक्त योगी के पापा और पुण्य दोनों पीछे रह जाते हैं। ऐसा कहा है इसे ही कर्म में कुशलता कहा गया है।

ध्यान योगी आत्मवान अर्थात् आत्मज्ञानी होता है। और आत्मज्ञानी के लिये भगवान् कहते हैं–**''आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।''** कर्म आत्मवान को बन्धन में नहीं डाल सकते। आत्मदर्शन होने पर ही सम्पूर्ण क्लेश एवं कर्मों की निवृत्ति होती है। आत्मदर्शन का उपाय समाधि है। योग दर्शन एवं श्री मद्भगवद्गीता में कर्म मीमांसा पर सूक्ष्मता से विचार हुआ है। कोई भी कर्म एवं संस्कार न रहे तभी योगी निर्विकल्प में स्थित हो पाता है। इसलिये श्रुति में, योग शास्त्र में ध्यान योग की पवित्र महिमा का गान किया गया है। प्रतिदिन ध्यानयोग में आरुढ़ हुआ योगी शनैः शनैः अपने लक्ष्य को पा जाया करता है।

* * *

कुशल विद्वानों के द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ है, यदि उससे कर्तव्य का ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होने पर भी उसका अनुष्ठान न हुआ।

हठयोग का हठी : योगी संसार सिंह

—गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

पिछले अंक का शेष

प्राणायामी योगी का जो आहार होना चाहिए वह सब उसको समझा दिया गया था बतलाई गई विधि के अनुसार वह अपने प्राणायाम के अभ्यास को नियमानुसार करता रहा। संसार सिंह रेचक पूरक सहित त्रिबंध लगा करके प्राणायाम के २० कुम्भक प्रातःकाल करता था २० दोपहर को और २० सायं समय किया करता था। पहले–पहले अभ्यास काल में यह बच्चा अर्द्ध रात्रि में भी प्राणायाम का अभ्यास उसने लगभग तीन या साढ़े तीन वर्ष तक बराबर किया। जिसके फलस्वरूप पहले उसके शरीर में कम्पन होना शुरू हुआ उसके बाद दार्दुरी वृत्ति एवं धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ते–बढ़ते कुम्भक के बल से उसका आसन जमीन से ऊपर उठने लगा। धीरे–धीरे उसको प्रकाशवर्ण क्षय वाली स्थिति पैदा हो गई योगदर्शन बताता है ततः क्षीयते प्रकाशावर्णम् अर्थात् योगी का प्राणायाम सिद्ध हो जाने के बाद प्रकाश के रास्ते का परदा नष्ट हो जाता है। उसके बाद उस योगी के अन्दर दूर दर्शन–दूर श्रवण–दूर स्पर्शन आदि की पूरी–पूरी योग्यताएँ आ जाती हैं। जो सिद्धियें देवताओं को सहज सुलभ है वह सब की सब सिद्धियाँ योगी को भी प्राणायाम के बल से सहज उपलब्ध हो जाती हैं। इस ही प्राणायाम के बल से संसार सिंह के अन्दर इन सभी सिद्धियों का उदय हो गया। वह दूरदर्शन, दूर श्रवण आदि सहज रूप से करने लगा। संसार सिंह के जीवन की कई अद्भुत घटनाओं का वर्णन हम इस लेख में आगे करते हैं जिससे सभी साधकों को यह ज्ञान हो जावे कि एक हठाभ्यासी योगी किस प्रकार योगी बन जाया करता है।

एक विशेष घटना—ब्रह्मचारी संसार सिंह जम्बू प्रान्तान्तर्गत कटरा शहर के विशेष चट्टान पर बैठा हुआ था। वह अपनी योगियाना दृष्टि से दृष्टि घुमाकर सारे संसार को देख रहा था। संसार सिंह का ऐसा नियम था कि संसार में सभी ओर अपनी दृष्टि घुमा करके देख लिया करता था कि कहाँ पर क्या हो रहा है उसके बाद मन को पूर्ण वैतृष्ण करके अर्थात् मन में पूर्ण पर वैराग्य की स्थिति को बनाकरके समाधिस्थ हो जाया करता था। समाधि उसके अपने निज स्वरूप की स्थिति थी। एक रोज अकस्मात एक घटना घटी। एक पुण्यात्मा जीव उसकी आँखों के सामने विश्राम में आया वह अमृतसर का एक डाक्टर था। अचानक योगी संसार सिंह की दृष्टि उस पर पड़ी और अपनी योग दृष्टि से उसके भुज्यमान संस्कारों को देखने लगा। ज्योंही योगी संसार सिंह ने उससे सम्बन्धित जीवात्माओं को देखा तो देखता है कि उसके दो लड़के परस्पर लड़ते हुए तीन मंजिले मकान से नीचे गिर गए किन्तु योगी संसार सिंह ने उनको अपनी दृष्टि का अवलम्ब दे दिया। उनकी सुरक्षा कर दी। उनके शरीर में किसी भी प्रकार की चोट नहीं आने दी। उसके बाद प्रत्यक्ष में उस डाक्टर से कहा कि महाशय क्या तुम डाक्टर हो और

जम्बू प्रान्त का भ्रमण करने के लिए अमृतसर से यहाँ आए हो। उस डाक्टर ने उत्तर दिया कि हाँ महाराज ! मैं अमृतसर से यहाँ भ्रमण करने आया हूँ और मैं अमृतसर का रहने वाला एक डाक्टर ही हूँ। संसार सिंह ने उत्तर दिया भाई डाक्टर अभी–अभी हमारी दृष्टि तुम्हारे कुटुम्ब के ऊपर चली गई थी। तुम्हारे दो लड़के बहुत ही शरारती और लड़ने झगड़ने वाले हैं वह दोनों ही पारस्परिक द्वन्द्व करते हुए अभी–अभी तीन मंजिल मकान से नीचे गिर गए हैं किन्तु तुम कोई चिन्ता मत करो उन पर हमारी दृष्टि पड़ गई है और वह लोग बिल्कुल सुरक्षित हैं। उनके गिरने वाली बात को कहने के लिए तुम्हारा छोटा भाई अभी–अभी तुम्हें फोन करने के लिए चल पड़ा है। तुम यहाँ से सीधे टेलीफून एक्सचेंज को चले जाओ। वहाँ जाते ही तुम्हें तुम्हारे भाई का टेलीफूल मिल जाएगा। फिर जैसे तुम्हारे भाई तुमसे कहें वैसा तुम कर लेना। हमारे बच्चे संसार सिंह के ऐसा कहने पर अमृतसर का वह डाक्टर सीधा टेलीफून सुनने पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसको अपने भाई का फोन मिला। जिसमें भाई ने कहा भाई अपने दोनों बच्चे लड़ते–झगड़ते अपने तिमंजले मकान से नीचे गिर गए हैं किन्तु उनको किसी भी प्रकार की चोट–फेंट नहीं आई। वह कह रहे हैं उनके किसी साधू ने अपनी गोद में गुपक लिया था। अमृतसर का वह डाक्टर तत्काल लौटकर अमृतसर चला गया। वहाँ जाकर उसने अपने बच्चों को देखा–वे दोनों बच्चे बिल्कुल ठीक थे। दोनों बच्चों ने बतलाया कि जब हम ऊपर से गिरे तो हमें किसी महात्मा ने आकर अपनी गोद में सम्भाल लिया। उनके मुख से सब समाचार सुनकरके डाक्टर साहब लौटकर काश्मीर आए और हमारे बच्चे संसार सिंह को पाँच हजार रुपए भेंट देने की कोशिश की किन्तु संसार सिंह ने इंकार कर दिया कि जिस समय मुझे प्राणायाम करने के लिए रुपए की जरूरत थी तब मैंने फौज में नौकरी की। अब मुझे इस रुपए की जरूरत नहीं है– इसे ले जाओ और अन्य किसी संस्था में इसे लगा देना। संसार सिंह के इस त्याग को देखकर अमृतसर के डाक्टर के मन में अतिशय प्रसन्नता बढ़ी कि धन्य हो इनका यह त्याग और इनका साधू जीवन। और इतनी योग्यता।

संसार सिंह के जीवन में घटित होने वाली कई एक घटित होने वाली घटनायें वहाँ के निवासी लोगों ने मुझसे बतलाई जो उसके जीवन की अलौकिक आत्मतत्व की चमत्कृतियाँ हैं। संसार सिंह के सम्पर्क के कुछ लोगों ने मुझसे उसकी कई एक अलौकिक घटनायें बतलाई। एक बार संसार सिंह अपने कुटुम्बीजनों से एवं अन्य सम्पर्क वाले जनों से बिल्कुल–बिल्कुल सम्पर्क छोड़ करके कहीं पर्वत श्रेणी में एकान्त सेवी सिद्ध योगियों की तरह से किसी पर्वत की गुफा में रहने लगे और कई वर्ष इसी प्रकार से गुप्त रूप से रहते रहे। सभी ग्रामवासी और संसार सिंह के निज सम्पर्क के अपने भाई बन्धुओं के मन में यह विश्वास हो गया कि संसार सिंह कहीं वन खण्ड में शरीर छोड़ चुका है अन्यथा यदा कदा हमें दिखलाई तो देता। सभी के मन में यह विश्वास हो गया कि संसार सिंह अब संसार में नहीं है. किन्तु उनके विचार में यह सत्यता नहीं थी।

एक बार अकस्मात एक घटना घटती है कि जिसको देखकर सभी को बहुत ही बड़ा आश्चर्य हुआ। घटना इस प्रकार थी—जो वहाँ के लोगों ने आकर स्वयं मेरे सामने कर्णनगर जम्मू में आर०एल० शर्मा चीफ इंजीनियर की कोठी पर बतलाई, लोगों ने मुझसे बतलाया कि उनके प्रान्त में अज्ञात रूप से मुसलमान फकीर घूमते रहते हैं और वह किसी से कोई बात नहीं करते और करते हैं तो उनकी वह वाणी अक्षरशः सत्य होती है। उन पीर जी ने एक बार सभी ग्राम निवासियों से आकर कहा कि भाई घनघोर वर्षा आने वाली है। जोरों से ओले गिरेंगे, ओलों के गिरने से जमीन भर जाएगी। चारों ओर से बर्फ ही बर्फ दिखलाई पड़ने लगेगी। इसलिए तुम लोग अपनी इन भेड़ बकरियों एवं अन्य गऊ—भैंस आदि पशुओं को अपने—अपने झोपड़ियों में बन्द कर दो। अन्यथा ओले गिरने से उनकी चोट खाने से व गहरी सर्दी से पशुओं का प्रायः खात्मा ही हो जायेगा। इसलिये मैंने तुम्हें तुम्हारे भले के लिए समझा दिया है। जिससे तुम सभी अभी से अपने पशुओं की छान छप्परों में कर लो ताकि उन की रक्षा हो जावे। गाँव के सभी लोगों ने पीर साहब की बात को तत्काल मान लिया और अपने सभी गऊ भैंस आदि पशुओं को अपनी—अपनी झोपड़ियों में कर दिया। किन्तु गाँव के लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना ही न रहा। पीर साहब का वचन आज तक कभी भी मिथ्या नहीं हुआ था। जो भी उनके मुख से निकलता था। वह सभी प्रकार से सत्य हुआ करता था। किन्तु अबकी बार गाँव के लोगों ने देखा कि वर्षा अथवा ओले गिरना तो दूर रहा प्रत्युत पूर्ण रूपेण धूप निकली रही किसी भी प्रकार से बादलों की छाया तक न हुई कई घण्टे व्यतीत हो जाने के बाद गाँव के सभी लोग इकट्ठे हो करके उन पीर साहब के पास गए और उनसे कहा पीर साहब आपकी वाणी तो कभी मिथ्या नहीं निकलती थी। क्या कारण हुआ कि अबकी बार आपकी वाणी बिल्कुल ही मिथ्या हो गई। तुषार ओले वर्षा आदि तो दूर रही प्रत्युत अभी तक बराबर धूप खिली रही है। लोगों की बातों को सुनकर पीर साहब कुछ हंस गए और हंसकर कहने लगे कि भाई तुम हमें यह बतलाओ कि तुम्हारे गाँव का राजपूतों का वह लड़का संसार सिंह अब कहाँ है। गाँव के लोगों ने कहा पीर साहब संसार सिंह अब कहाँ है वह तो चार छः वर्ष से बिल्कुल गायब है। हमें दिखलाई तक नहीं दिया हमारे विचार में तो कहीं जंगल में उसने अपना शरीर छोड़ दिया है और अब वह संसार में नहीं है।

पीर साहब ने उत्तर दिया नहीं भाई ऐसी बात नहीं है वह सब गाँव उसी संसार सिंह का ही है। तुम इस पहाड़ की मीलों लम्बी खोह को देखकर आओ। गाँव वालों ने वह खोह जाकर देखी तो ऊपर तक वह ओलों से भरी हुई थी यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। पीर साहब ने समझाकर कहा कि भाई आश्चर्य में क्यों पड़े हो यह सब संसार सिंह का खेल है। उसने अपने गाँव के और अपने गाँव के निकटवर्ती गाँवों को बिल्कुल बचा लिया है। और यहाँ पड़ने वाले ओलों को पहाड़ की खोह में भर दिया और वह संसार सिंह भी इसी पहाड़ की खोह में छिपा हुआ है। पीर के ऐसा कहने पर गाँव के सभी लोगों ने देखा कि संसार सिंह उसी पहाड़

की तरफ से भागा हुआ आ रहा है। संसार सिंह को आया देखकर उस मुसलमान पीर ने संसार सिंह से कहा कि कहो उस्ताद कि तुमने अपना गाँव अपने लोग तो बाल–बाल बचा लिए और पहाड़ की बहुत लम्बी खोह बर्फ के टुकड़ों से भर डाली।

पीर साहब की बात को सुनते हुए हंसते हुए संसार सिंह ने कहा कि ऐसा ही होता है। ऐसा ही होता है। इन शब्दों को दो–तीन बार कह करके संसार सिंह पुनः पहाड़ की ओर भाग गया एवं अर्न्तध्यान हो गया। संसार सिंह के गाँव के लोगों ने दुबारा उसे ढूँढने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु संसार सिंह का कोई पता नहीं चला।

एक बार जम्मू के जिस कॉलेज में संसार सिंह पढ़ता था और हॉस्टल में रहता था उसके हॉस्टल में विद्यार्थी जो उसके पुराने सहपाठी थे उन लोगों ने मुझसे कहा कि महाराज जी हमारे हॉस्टल में बन्दर हम सब को बहुत परेशान करते थे। उस समय अकस्मात् संसार सिंह कहीं से घूमता हुआ हमारे हॉस्टल की तरफ आया। हम लोग काफी लोगों के मुख से यह सुन चुके थे कि हमारा साथी संसार सिंह अब ऊँची पहुँच का पीर है हम सभी ने अपने भाई संसार सिंह से कहा कि भाई संसार सिंह हम तेरे साथी हैं और तू एक पहुँच वाला योगी महात्मा है कम से कम बन्दरों को ही रोक दे—यह बन्दर हमें तंग न करें और नुकसान न पहुँचायें संसार सिंह ने हँसते हुए कहा कि अच्छा भाई बस अब से तुम्हारे होस्टल में बन्दर कोई नहीं आएगा। होस्टल के लड़कों ने हमसे कहा कि गुरुजी जब से संसारसिंह ने हमसे यह वचन कहे हैं। तब से अभी तक एक बन्दर भी होस्टल में नहीं दिखलाई दिया।

यह तो करामात हमने मित्र की देखी और न हमें उस दिन के बाद संसार सिंह हमें दिखलाई दिया, संसार सिंह के भाई मेरा पता लगा कर मुझसे मिलने के लिए जम्मू में आए। मैंने उससे कहा कि तुम मेरे बच्चे संसार सिंह को ले आओ। उन्होंने कहा कि महाराज हम उसे कैसे लाएँ। पहले तो हमें वह मिलेगा ही नहीं और कहीं मिल भी गया तो हम लोगों को तो बुरी तरह ईंट और पत्थर मारता है। मैंने उनसे कहा भाई जाओ तुम उसे ढूंढढांढ कर कहीं से ले आओ। मैं भी तो एक बार अपने बच्चे को देख लूँ जाओ तुम लोग उसे तलाश करो उसे पकड़कर हमारे पास अपने साथ ले आना। हमारे पास जरूर आ जाएगा और दूसरे दिन वह लोग संसार सिंह को साथ लेकर मेरे पास आए। संसार सिंह आकर मेरी गोद में बैठ गया किन्तु उसका शरीर भारी था नवयुवक था मैंने संसार सिंह से कहा संसार सिंह तुम युवक हो तुम्हारे शरीर का भार मैं नहीं उठा सकता अब तुम नीचे बैठ जाओ। मेरा ऐसा कहने पर संसार सिंह जमीन पर बैठ गया संसार सिंह के भाइयों ने उससे कहा कि महाराज जी यह सब दिन पागल बना रहता है। ईंट पत्थर मारता रहता है। किसी प्रकार इसका पागलपन दूर कर दें। यह कह कर संसार सिंह के भाई थोड़ी देर को कहीं चले गए। संसार सिंह ने मुझसे कहा गुरुजी यदि मैं पागल न बनूँ तो यह लोग मुझे खा जाए। इसलिए मैं इन लोगों के सामने हर समय पागल

ही बना रहता हूँ। संसार सिंह के मुख से निकले हुए यह शब्द दीवार की ओटक में खड़े हुए उसके दोनों भाई भी सुन रहे थे। उन्होंने चटपट सामने आकर कहा कि महाराज जी से तो तू अच्छी तरह बात कर रहा है। हमारे साथ यह ढोंग क्यों कर रहा है। उनके सामने संसार सिंह फिर पागलों की सी बात करने लगा। संसार सिंह के भाई कहने लगे कि महाराज जी हमारी तो यह बहुत बुरी दुर्दशा रखता है। पत्थर मार–मार के हमें फोड़ डालता है। किन्तु गुरुजी एक आश्चर्य हमने देखा है कि यह हमें पत्थर मारता है। पत्थर बड़े जोर से लगता है किन्तु दर्द तो होता है हमारे शरीर में पर चोट किसी को नहीं आई और एक बात और होती है कि जिस दिन यह हमारी पिटाई क़रता है उसी दिन १०–२०–५० हजार का कोई तगड़ा लाभ हमें होता है। मैने हँसते हुए उसके भाइयों से कहा कि भाई जब तुम्हें इतना ज्यादा लाभ होता है तो तुम पिट लिया करो। उसके भाइयों ने उत्तर दिया कि गुरुजी आप ऐसी कृपा कर दो कि यह बिना मारे ही दे दिया करें। उनकी इस बात को सुनकर संसार सिंह हँस पड़ा और हंसकर कहा कि बिना मार खाए कुछ नहीं मिलेगा भाग जाओ। संसारसिंह के भाई ने कहा कि भाई तू हमें गुरुजी के चरणों से क्यों भगाता है। तू जो कुछ करेगा सो करेगा ही। यह बातें होते–होते समय बहुत लम्बा हो गया और हम अपने कमरे में जाकर सो गए। प्रातः काल उठे–शौच स्नान करके श्री प्रभुजी के आरती पूजन का समय हुआ। संसार सिंह के भाइयों ने मुझसे कहा कि संसार सिंह को भी आरती में बुला लो–वह शराबियों की तरह नशे में पड़ा हुआ है। मैंने उसके भाइयों से कहा कि भाई संसार सिंह इस समय ध्यान के नशे में है। इसको वैसा ही पड़ा रहने दो। हम उसको यहाँ बुलायेंगे तो उसकी वृत्तियों में भंग आएगा। ऐसा करना उचित नहीं है। सब आरती पूजा उसकी समाधि में ही हो रहा है। उसको वहीं पड़ा रहने दो। किन्तु संसार सिंह के भाइयों ने आग्रह नहीं–छोड़ा। हमने संसार सिंह को आवाज दी कि संसार सिंह ऊपर आजाओ– हम सब अब श्री प्रभुजी की आरती कर रहे हैं। संसार सिंह ने हमारी बात का उत्तर देते हुए अपनी पंजाबी भाषा में कहा कि गुरुजी **"त्वाड़ी आज्ञा है तो मैं आजान्दा कि तुस्सी यह दस्सो कि दफा कैड़ी"** लगी है। मैंने उसको उत्तर दिया कि नहीं बच्चे तेरे पर कोई दफा नहीं लगी है तू वहीं पर समाधिस्थ रहे। संसार सिंह जेहोजि त्वाड़ी आज्ञा यह शब्द कह करके वहीं पर समाधि में पड़ा रहा। आदि–आदि बहुत घटनाऐं संसार सिंह के जीवन के अन्दर घटित हुईं। जो सर्व   साधारण की शक्ति से परे थी। अब संसार सिंह के विषय में सुनने में आया है कि वह शरीर छोड़ चुका है। पहले भी इस प्रकार की किवदन्तियाँ बहुत बार फैली किन्तु संसार सिंह कहीं पहाड़ में अदृश्य व अलोप रहा। अस्तु कुछ भी हो यह तो नितान्त सत्य है ही है कि संसार सिंह ने उच्चलम योग स्थिति को प्राप्त किया और अपने आपको सभी प्रकर से कृतिकृत्य बना लिया।

❋ ❋ ❋

"सदगुरू–शरणागति ही सिद्धयोग की साधना है"

डा० विजय सिंह

अठारह–उन्नीस वर्ष की चंचलता से परिपूर्ण युवक को अहैतुकी कृपा कर, सदगुरू भगवान ने अपने शरण में सन् १९६५ में लिया। अब जीवन का उत्तरार्ध है। वे कृपासागर कितना दिये, कितना अपने सन्मुख रखकर अन्तःकरण का विकास करवाया। यह सब सोचकर मन आत्म मुग्ध हो उठता है। वहीं साधना के प्रति अति प्रमाद। स्वाध्याय के प्रति अनियमानुवर्तीता। यह सब सोचकर मन ग्लानि युक्त होता है।

मन विकल्प देता है। **"अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्"**। यह भगवान श्री कृष्ण कहते हैं। प्रयत्न पूर्वक साधना करता हुआ संकल्प शून्य हुआ योगी परम गति को (आत्म प्रतिष्ठा को) प्राप्त होता है। समय प्रयत्न का अनेक जन्म हो सकता है। दूसरी ओर एक और बात भगवान कहते हैं **"क्षिप्रं भक्ति धर्मात्मा"** कैसे ? **"मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते"** जो मेरे को भजते हैं अनन्य भाव भावित होकर, वे मेरी माया को सहज ही पार पा जाते है। प्रभु की माया स्थूल से सूक्ष्मातिसूक्ष्म महततत्व तक का अष्ठधा प्रकृति ही है। सही अविधा का महाअन्धकार हमें अपने स्वरूप से विस्मृत किये हुये है। **"ते द्वन्द्वमोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः"**। आत्मा रूपी परमात्मा इसी मोहरूपी माया के अंधकार से आवृत है, सभी जीव में। **"नाहं प्रकाशः र्सवस्य योगमायासमावृतः"**। मैं सब में होते हुये भी उसके द्वारा जाना नहीं जाता क्योंकि योगमाया द्वारा मैं छिपा हुआ हूँ। यहाँ योगमाया प्राकृतिक शक्ति है।

अनेक जन्मों के प्रववत पुण्य उदय होने पर सिद्ध सदगुरू मिलते हैं। परिस्थितियों के परवस होकर (रोग–शोक निवारणार्थ) जब हम, उनके चरण–शरण में आते हैं, तो वे कृपालु प्रभुः सर्वप्रकार से कृतार्थ करने के लिये अपनी शक्ति का संचार शिष्य में करते हैं। उनके सानिध्य में अन्तरजगत घटाकाश, चित्ताकाश, चिदाकाश का अनुभव साधना की तत्परता, नियमानुवर्तिता से उद्भासित होता है। जिस शिष्य में जितनी अनन्यता होगी, जितना श्रद्धा समर्पण सदगुरू चरणों में होगा, उतना ही शिघ्राति–शीघ्र साधना फलीभूत होगी।

अनन्यता सिद्धयोग की अनिवार्यता है–

आनन्दकन्द सदगुरुदेव जी के पास नित्य पचासों–सैकड़ों पत्र शिष्यों, जिज्ञासुओं के आया करते थे। उन सभी पत्रों के उत्तर में श्री सदगुरू भगवान लिखवाया करते थे कि चिरन्जीव तुम अपने गुरू मंत्र को उठते–बैठते, चलते–फिरते हर समय जाप करते रहा करो। आज देखने में आ रहा है, लोग मनोमुखी होकर जिस–तिस साधनात्मक मंत्रों का अनुष्ठान करने लगे हैं। वाराणासी मानस मन्दिर के तत्वाधान में सदगुरू भगवान का प्रवचन हुआ था। वहाँ सदगुरुदेव ने कहीं कि यदि सिद्ध गुरूदेव ईट–ईट जपने को किसी को कह दें तो उसे ईट–ईट कहने से ही आध्यात्म लाभ होगा। मातृकाओं के सुप्त शक्ति को सिद्ध गुरुदेव अपने संकल्प से जाग्रत कर देते हैं। मंत्र के माध्यम से स्वयं सदगुरू देव अपने निर्मापित सूक्ष्म स्वरूप को अनुगत शिष्य में स्थपित करके रहा करते हैं।

पत्रोत्तर में दूसरी बात महत्व पूर्ण थी, चिरन्जीव तुम उन आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों का अनन्य भाव से चिन्तन करो वो कृपाधन अवश्य-अवश्य ही तुम्हें सफल मनोरथ करेंगे।

गीता गुरु-शिष्य संवाद है-

जब अर्जुन ने कहा था कि धर्म के मार्ग में मैं मोहग्रस्त हो गया हूँ। प्रभो! विनय पूर्वक मैं पूछता हूँ, जो मेरे लिये परमकल्याणकारी हो वह मार्ग, वह उपदेश मुझे आप कृप कर दें। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण हूँ। अर्जुन कितना आर्त होकर, अपने रजस अहं का त्याग कर योगेश्वर सद्गुरु श्री कृष्ण से द्वितीय अध्याय से लेकर अठ्ठारहवें अध्याय तक साधना उपदेश व अनुभव सब कुछ पाता है। विशिष्ट अनुराग के बिना अनन्यता, शरणग्रता सम्भव नहीं है। ऐसा होने पर भगवान सर्वसमर्थ प्रभु! स्वयं साधना का सब भार उठाते हैं।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।६५/१८।।
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।६६/१८।।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अनन्यता के सन्दर्भ में गोस्वामी तुलसीदास जी का एक कथन बहु-श्रुत है-"**तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बाण लेउ हाथ**" एक बार भ्रमण करते हुये गोस्वामी जी वृन्दावन पहुँचे। बिहारी जी तत्वतः वही हैं जो भगवान राम हैं। श्री तुलसी दास की अनन्यता श्री राम में थी। अतः बड़े ही धर्म संकट में वे पड़ गये। ऊहापोह मन में उठा। बिहारी जी तो हमारे आराध्य नहीं हैं। हम कैसे इन्हें प्रणाम करूँ? कहते हैं- वे बड़ी दीनता पूर्वक अपना पूरा ह्रदय समर्पित करते हुये प्रार्थना किया-

मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली धरे नाथ।
पर तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लेऊ हाथ।।

कहते हैं-भगवान बिहारी जी, प्रभुराम के रूप में गोस्वामी जी को दर्शन दिये तब गद्गद ह्रदय, अश्रुगाल, नतुजान हुये थे संत तुलसीदास।

आज हम जिस-तिस को जो अपने को गुरुदेव, महाप्रभु जी के आवेश घोषित किये हुये हैं अपनी श्रद्धा अर्पित करने लगे हैं।

ज्ञान सिन्धु में भगवान सदाशिव ने जो कार्तिकेय जी को उपदेश दिया है वही सिद्धयोग का गुप्त साधन मार्ग है। हर दिक्षा प्राप्त शिष्य के अन्तःकरण में स्वयं सद्गुरु का निवास होता है। अतः स्नान, भोजन आदि सर्व लौकिक कर्मों में सद्गुरु देव ही इस शरीर के माध्यम से स्नान कर रहे हैं, भोजन का भोग ले रहे हैं ऐसी धारणा प्रबलता व अनन्य भाव से हर शिष्य को करना चाहिये। अनन्यता से जिसका ध्यान, भजन, पूजन किया जावेगा वह उनके अनुरूप बनता जावेगा।

निःसंदेह यह सब घोर पतन की ओर हमें ले जाने वाला सिद्ध होगा। अतः हम सभी सिद्धमार्ग में प्रवेश प्राप्त भाई-बहन श्री गुरुदेव को ही अन्तः में धारण कर बिना मनोमुख हुये सतत् उनके उपदेश को ही अपना सम्बल समझें। वो कृपाधन श्री प्रभुजी हम सभी पर अपनी कृपा दृष्टि सदैव बनाये हुये हैं।

❋ ❋ ❋

भजन महिमा

–कृष्ण कुमार पण्डेय (गोरखपुर)

आज वर्तमान समय में सम्पूर्ण संसार समस्याग्रस्त है। इसका कारण क्या है ? यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। क्योंकि एक समस्या के समाधान के साथ दूसरी जन्म लेती है। किन्तु इस पर प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुसार तर्क–कुतर्क कर रहा है। लेकिन समस्या का सामाधान नही मिल पा रहा है। वास्तव में समस्या का समाधान लोक से नही प्राप्त हो सकता है। जैसे शरीर की गंदगी साबुन से ही जा सकती है। लेकिन विचारणीय बिन्दु यह है कि साबुन से बाह्य गंदगी ही जा सकती है। समस्या का समाधान बाह्य गंदगी के धुल जाने से नही हो सकती है। जब तक कि आन्तरिक शुचिता नही होगी तब तक किसी भी समस्या का समाधान कर लेना आसान नही है। प्रश्न यह उठता है कि समष्टि की शुचिता की जा सकती है। उसके लिए संत तुलसी के मानस पर ध्यान दिया जाय तो अपेक्षित समाधान हो सकेगा। परमं संत तुलसीदास जी ने राम चरित मानस में लिखा–

स्वातः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषा निबन्ध मति मञ्जुल मातनोति।।

अर्थात श्री रघुनाथ की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा की रचना में विस्तृत करता है।

विचार किया जाय कि तुलसी का स्वान्तः सुखाय कितना विस्तृत और विशाल था कि सम्पूर्ण संसार उससे तृप्त हो रहा है। यह कहा जाय कि विशाल आकाश कि तरह या उससे भी अधिक विशाल योगेश्वर श्री कृष्ण गोवर्धन छत्र की तरह कि समस्त ब्रजवासी आनन्दपूर्वक कई दिन बिताये। संत नवनीत की तरह होते है। वे दूसरों के दुःख को देखकर स्वयं पिघल जाते है। जबकि नवनीत को गर्म करना पड़ता है।

विचार करके देखा जाय तो समस्या के मूल में मोह (अज्ञानता) कारण रूप में है। यही समस्या मनुष्य के काया की है। क्योंकि एक ही रोग के वशीभूत होकर व्यक्ति को शरीर त्यागना पड़ता है। इसके बाद भी असाध्य समस्याएं है। जिससे जीव को निरन्तर कष्ट होता रहता है। विकास के क्रम में समस्याएँ बढ़ती जा रही है। ऐसे में वह समाधि को कैसे प्राप्त कर सकता है। तात्पर्य यह कि व्यष्टि के समस्या के समाधान होने पर ही समष्टि का कल्याण हो सकता है। हम सुधरेंगें तो युग सुधरेगा। समस्या के समाधान का सूत्र प्रातः स्मरणीय परम आराध्य सद्गुरूदेव भगवान की अमोघ वाणी। जप करो–''**सवाध्यायात् ईष्ट देवता सम्प्रयोगः**'' अपने प्रवचनों में सद्गुरूदेव भगवान ने कहा था–देखो ! मंत्र अग्नि तत्व हैं। यह सारे मलों को जला देती है। यही नही मंत्र जप से तीन प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। प्रथम तो गुरूदेव की

शक्ति, दूसरा जो मंत्र को सिद्ध किये हुए होते है उनकी शक्ति तीसरी मंत्र के देवता की शक्ति। इस लिए स्वाध्याय करो। इससे आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक उत्थान होता चला जायेगा।

कलिकाल में भजन और जप से कल्याण हो जायेगा, क्योंकि यह आसान और सरल साधन है। सिद्ध गुफा सवांई से सम्बन्धित सभी साधक समुदाय इस तथ्य को भली भाँति जानते है। यह अनुभव भी करते है। संत तुलसी दास ने कहा है कि–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि-सुमिरि नर उतरहि पारा।।

और भी–

नाम प्रसाद संभु अविनासी।
साजु अमंगल मंगल रासी।।

कलि के समस्त जीव रोगी रहें जो शोक, मोह, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग के दुःख से दुःखी है। इन दुःखों को कोई विरला ही जान पाया है। ये रोग प्राणियों के जान लेने पर क्षीण होते है लेकिन नाश नही होते। ये विषय रूपी कुपथ्य पाकर अच्छे साधक के हृदय में अंकुरित हो जाते है। नारद जी का मोह प्रसंग ऐसा ही है। तो समान्य जीव तो बच ही नहीं सकता है। लेकिन इसका नाश हो सकता है। तुलसी ने कहा–

राम कृपा नासहि सब रोगा।
जौ एहि भाँति बनै संजोगा।।
सद्‌गुरू वैद वचन विश्वासा।
संजम यह न विषय कै आसा।।

अर्थात् राम की कृपा का संयोग बन जाय तथा सद्‌गुरू रूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो। विषयों की आशा न करें संयम करे तो ये रोग नष्ट हो जायेगे। ईश्वर का भजन या सतसंग भक्ति रूपी संजीवनी के समान है। श्रद्धा के साथ पूर्ण रूप से अनुपान हो तो रोग से मुक्ति पायी जा सकती है। सद्‌गुरूदेव की कृपा से ऐसा संयोग बन पाता है, अन्यथा बहुत प्रयत्न से भी अधिक लाभ नही होता है। तुलसीदास पुनः इंगित करते है कि–

जानिअ तब मन रविरूज गोसाई।
जब उर बल विराग अधिकाई।।
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई।
विषय आस दुर्बलता गई।।

अर्थात् मन को निरोग हुआ तब जानना चाहिए जब हृदय मे वैराग्य का बल बढ़ जाय उत्तम बुद्धिरूपि भूख नित नयी बढ़ती रहे और विषयों की आस रूपी दुर्बलता मिट जाय।

भजन का प्रभाव शरीर पर स्थायी होता है। इसीलिए व्यक्ति को नित्य ईश्वर का स्मरण

चिन्तन पूजन एवं सद्गुरू प्रदत्त मन्त्र का स्वाध्याय होना चाहिए। जीवन मे भजन का अमिट प्रभाव है। **"सुवा पढ़ावत गणिका तरिगै।"** बालक ध्रुव ने स्वाध्याय से ईश्वर साक्षात्कार करके अटल पद प्राप्त किया। गोस्वामी जी ने पुनः चेताया कि–

हिमते अनल प्रगट वरू होई।
विमुख राम सुख पावन कोई।।

अर्थात् बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाय यह अनहोनी बात हो जायेगी परन्तु श्रीराम जी से विमुख होकर कोई सुख नही प्राप्त कर सकता है। और भी कहा–

वारिमथें धृत होई वरू सिकता से बरू तेल।
विनु हरि भजन न भव तरयि यह सिद्धान्त अपेल।।
मस कहि करइ विरंचि प्रभु अजहि भसकते हीन।
अस विचारि तजि संसय रामहि भजहि प्रवीन।।

तात्पर्य यह कि जल के मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाय, बालू से तेल निकल जाय, परन्तु श्री हरि के भजन बिना संसार रूपी समुद्र से नहीं तरा जा सकता है यह अटल सिद्धान्त है। प्रभु मच्छर को ब्रह्मा बना सकते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचार कर चतुर पुरूष सब सन्देह त्याग कर श्री राम जी को ही भजते हैं।

गोस्वामी सिद्धान्त की बात करते हैं, इसे अन्यथा नही समझना चाहिए। जो मनुष्य श्री हरि का भजन करते हैं अत्यन्त दुस्तर संसार–सागर को सहज ही पार कर जाते हैं। इसलिए मनुष्य का साधन पथ अपने लक्ष्य की ओर ही होना चाहिए। ऐसा संतों, वेदों एवं पुराणों, सद्ग्रंथों का उपदेश है। इसी क्रम में किसी साधक ने सद्गुरूदेव भगवान से पूछा–क्या ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है ? यदि संभव है तो कैसे ? गुरूदेव भगवान बोले–लल्ला गुरू प्रदत्त मंत्र का अविछिन्न रूप से जप होने पर निश्चित ही ईश्वर का सद्यः साक्षात्कार हो सकता है। पातंजलि का सूत्र है–**"स्वाध्यायात् ईष्ट देवता सम्प्रयोगः।"**

इस कलिकाल में भजन जीवन का अनिवार्य अंग होना चाहिए। तुलसी दास की इस उक्ति को स्मरण रखना प्रसंगिक होगा–

एक घरी आधी घरी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरहि कोटि अपराध।।

अर्थात् विशुद्ध ह्रदय से ईश्वर का चिन्तन भजन आधे के आधे हिस्से में किया जाय तो भी वह हजारों अपराधों से मुक्ति प्रदान कर देता है। अतएव हम कलिकाल के जीवों के लिए उपयुक्त साधन है। क्योंकि परीक्षा रूपी अन्तराय आते रहते हैं। धैर्य धारण कर सोपान क्रम में आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर होगा।

❋ ❋ ❋

सिद्ध पुरूष का अहंकार

—जब तक ईश्वर के दर्शन न हों, जब तक उस पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना न बन जाए, तब तक 'मैं कर्ता हूँ' यह भ्रम रहेगा ही; 'मैंने—सत्कर्म किया', 'मैंने असत्कर्म किया' यह भेदबोध रहेगा ही। यह भेद—बोध उन्हीं की माया है, और इसी के कारण यह संसार चल रहा है। विद्यामाया का आश्रय लेने पर सन्मार्ग पकड़कर चलने से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। जो ईश्वर को प्राप्त कर लेता है, उनके प्रत्यक्ष दर्शन कर लेता है, वही माया को पार कर सकता है। 'ईश्वर ही एकमात्र कर्ता हैं, मैं अकर्ता हूँ ' यह विश्वास जिसे है वही जीवन्मुक्त है।

सिद्ध पुरूष का अहंकार

—क्या 'अहं' कभी पूरी तरह से नहीं जाएगा ? कमल की पँखुड़ियाँ समय पर झड़ जाती हैं लेकिन उनका निशान रह जाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है, तो उसका अहंकार पूरी तरह नष्ट हो जाता है, पर उसका थोड़ा दाग रह जाता है, किन्तु उस अहंकार से कोई अनिष्ट नहीं होता।

—जिसने ईश्वर के दर्शन किए हैं वही ठीक—ठीक ज्ञानी है। उसका स्वभाव बालक जैसा हो जाता है। बालक के भी अलग व्यक्तित्व होता है, अस्मिता होती है, परन्तु; वह केवल आकार मात्र है। बालकों का 'अहं' बड़ों के 'अहं' की तरह हानिकारक नहीं होता।

—कुछ महापुरूष सप्तम भूमि या समाधि की सर्वोच्च अवस्था में पहुँचकर भगवद्—बोध में विलीन हो जाने के बाद भी लोककल्याण के लिए उस भूमि से उतर आते हैं। समाधि के बाद भी वे इच्छापूर्वक 'विद्या का अहं' रख देते हैं। यह अहं का आभास मात्र है, यह पानी पर खींची गई रेखा के समान होता है।

—रस्सी जल जाने पर भी उसका आकार बना रहता है, पर उसके द्वारा किसी को बाँधा नहीं जा सकता। इसी प्रकार ज्ञानाग्नि में दग्ध होकर अहं का भी केवल आकार भर रह जाता है।

—मनुष्य सपने में यह देखकर कि कोई उसे काटने आ रहा है, मारे डर के हड़बड़ाकर उठ बैठता है। यद्यपि वह उठकर देखता है कि कमरा बन्द है और अन्दर कोई नहीं है फिर भी कुछ समय तक उसकी छाती धड़कती रहती है। इसी भाँति यह 'मैं' पन या अभिमान चला जाने पर भी उसका कुछ जोर रह ही जाता है।

—समाधि के बाद भी कोई—कोई 'मैं' को रख छोड़ते हैं—'दास मैं' या 'भक्त का मैं'। शंकराचार्य ने लोकशिक्षा के लिए 'विद्या का मैं' रख छोड़ा था।

—हनुमान को ईश्वर के साकार और निराकार दोनों स्वरूप के दर्शन हुए थे किन्तु इन दर्शनों के बाद उन्होंने 'दास मैं' रख छोड़ा था। नारद, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार आदि ने भी इसी तरह ब्रह्मदर्शन के बाद भी 'दास मैं', 'भक्त मैं' रख छोड़ा था।

एक भक्त–क्या नारदादि केवल भक्त थे या ज्ञानी भी थे ?

श्रीरामकृष्ण– नारदादि को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ था, किन्तु फिर भी वे कलनादिनी निर्झरिणी की तरह भगवन्महिमा का गुणगान करते हुए विचरण करते रहते थे। लोकशिक्षा और धर्मरक्षा के लिए उन्होंने 'विद्या का मैं' रख छोड़ा था, ब्रह्म में पूर्ण विलीन न होकर अपने अलग अस्तित्व का मानो थोड़ा चिह्न रख छोड़ा था।

* * *

शोक-संवेदना

–यह सूचना देते हुए दुःख हो रहा है कि कछवा–मिर्जापुर के हमारे पुराने गुरुभाई श्री स्वामी प्रसाद सिंह जी का पिछले २४ मई को देहावसान हो गया है। इसी परिवार में दो दुःखद घटनाऐं पहले ही हो चुकी हैं। इनके परिवार में इनके छोटे भाई श्री अर्जुनसिंह जी एवं सुपुत्र डॉ. विजय सिंह जी हैं। श्री प्रभु जी से प्रार्थना है कि इन्हें इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति दें व श्री प्रभु जी उन्हें अपना अभय चरण शरण दें।

–मई माह में मेरठ के एक गुरुभाई श्री विनोद कुमार सेठ का हृदय गति रुक जाने से अचानक देहावसान हो गया है। वे दिल्ली में आकाशवाणी में कार्यरत थे। सिद्धयोग परिवार दुःखी परिवार को अपनी संवेदना प्रेषित करता है।

–माह मार्च में कुरुक्षेत्र की गुरुबहिन वेदवती जी का देहावसान हो गया है। वे अत्यन्त गुरु निष्ठ साधिका थीं। उनके परिवारी जनों को भी हम अपना शोक संवेदना प्रेषित करते हैं।

–इसी माह में ही मुरैना जिले के पहाड़गढ़ के राजा श्री पदमसिंह जी का देहावसान हो गया है। वे गुरुदेव के बहुत पुराने दीक्षित बच्चे थे।

इन सब बिछुड़े आत्माओं को हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, प्रभु इनको सदगति दें।

–सम्पादक सिद्धयोग

सिद्धयोगी के संकल्प से ट्रेन का रूकना-चलना

प्रेषक :- केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

सिद्ध समर्थ योगेश्वरों का लीला चरित्र बड़ा ही विलक्षण एवं अलौकिक हुआ करता है। वे करूणानिधान किसको निमित्त बनकर कब, क्या एवं कैसे कृपा करते हैं, यह समझ पाना किसी अनन्यनिष्ठ एवं विशेष कृपापत्र शिष्य के लिए भी उनकी अहैतुकी कृपा पर ही निर्भर करता है। आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमेहन जी महाराज का यह कृपा प्रसंग सन् उन्नीस सौ इकसठ–बासठ ईस्वी के जून मास के अन्तिम सप्ताह का है। श्री सिद्धयोग प्रचार का यह वृक्ष जो आज विशालकाय दिखलायी दे रहा है उसे अनादि सिद्ध योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने रोपित करके उसकी पूरी जिम्मेदारी अपने यौगिक अधिकारी शिष्य योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को दे दिया था जो अपने शैशव काल में ही थे। उस समय यह योग शब्द सांसारिक प्राणियों के लिए बिल्कुल ही अपरिचित था। मजे मजाये बेजोड़ पहलवान की तरह सम्पूर्ण योग शक्ति से परिपूर्ण श्री गुरूदेव जी महाराज अकेले ही योग का डंका बजाने निकल पड़े। अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा में सहायता के लिए कभी आदरणीय श्री ज्ञानी बाबा को साथ लिया, तो कभी आदरणीय श्री पुष्कर जी को साथ लगा लिया एवं कभी महात्मा श्री कृष्णानन्द को साथ ले लिया करते थे।

अनादि नाथ एवं परम योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस चैत्र नवमी महान आनन्द से मनाने के बाद श्री सद्गुरूदेव जी महाराजा ने आगरा एवं फिरोजाबाद जनपदों में अपने यौगिक प्रचार कार्यक्रम किये। इन दिनों श्री गुरूदेव पाँच से सात दिनों का प्रचार किया करते थे। आराध्यदेव जी के यौगिक प्रचार का यह कार्यक्रम चैत्र नवमी के बाद से आरम्भ होकर श्री गुरुपूर्णिमा के आरम्भ तक चलता था। नवमी उत्सव में कालका से आये हमारे एक आदरणीय गुरुभाई ने श्री गुरूदेव से योग प्रचार कार्यक्रम करने की आज्ञा पहले से ही ले रखी थी एवं श्री सँवाई धाम आकर वह अपने यहाँ कार्यक्रम करने चलने की प्रार्थना की। उस समय आश्रम पर आदरणीय श्री पुष्कर जी के अलावा मात्र दो ब्रह्मचारी और उपस्थित थे। आरती पूजा एवं आश्रम का पूरा दायित्व इन्हीं दो ब्रह्मचारियों को सौंपकर अनाथनाथ श्री गुरूदेव जी अपने कालका निवासी प्रिय शिष्य श्री प्रभुदयाल के यहाँ यौगिक प्रचार कार्यक्रम करने श्री पुष्कर जी को साथ लेकर यात्रा आरम्भ किए। प्रातःकाल निकल कर आराध्यदेव यौगिक प्रचार स्थल पर देर शाम पहुँच गये। श्री पुष्कर जी श्री गुरूदेव भगवान का बिस्तर, सामान एवं जलपान लिये थे तथा भाई श्री प्रभुदयाल जी पुष्कर जी का बिस्तर बन्द एवं सामान लिये थे। श्री गुरूदेव जी महाराज अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी का दिव्य स्वरूप एवं आरती पूजा से संबंधित सामान लेकर यात्रा कर रहे थे। अपने प्रिय शिष्य के घर पहुँचने पर आराध्यदेव जी ने श्री महाप्रभु जी की

सायंकालीन आरती की। इसके पूर्व श्री प्रभुदयाल जी ने अपनी धर्मपरायणा पत्नी एवं बाल गोपालों के साथ अतीव श्रद्धा एवं भाव से श्री गुरुदेव भगवान के अपने घर पहुँचने पर आरती पूजन किया एवं सबके साथ साष्टांग प्रणाम निवेदित किया। अगले दिन से विधिवत् आरती पूजन एवं यौगिक प्रचार का कार्य आरम्भ हो गया। प्रातःकालीन सत्संग में श्री प्रभुदयाल जी के परिवार के अलावा मात्र आठ दस एवं सायंकालीन कार्यक्रम में लगभग बारह पन्द्रह साधक ही एकत्र हो पाते थे। इसमें हमारे एक आदरणीय गुरू भाई वह भी थे जो करीब नौ किलोमीटर से अपनी धर्म परायणा पत्नी के साथ उसी दिन पहुँच गये थे। जिस दिन श्री गुरुदेव भगवान आदरणीय गुरुभाई श्री प्रभुदयाल जी के घर पहुँच गये थे। बाकी सभी साधक श्री दयाल जी के गाँव के या आसपास के थे। श्री गुरुदेव भगवान ने अपना यह कार्यक्रम खूब धूम धाम से किया एवं श्री महाप्रभु ज़ी के दिव्य स्वरूप की प्रातः कालीन आरती के पश्चात् (जिसे श्री आराध्यदेव जी प्रायः प्रातः पाँच बजे से पूर्व ही किया करते हैं) अगले दिन सँवाई धाम जाने का प्रोग्राम नियत किये।

अपने कार्यक्रम के अन्तिम दिन की रात्रिकालीन कार्यक्रम में आराध्यदेव जी ने उपरोक्त कार्यक्रम तय किये एवं सभी उपस्थित साधकों को इसकी जानकारी दे दी। इसी कार्यक्रम में नौ किलोमीटर की दूरी से आये हमारे आदरणीय भाई श्री हरेन्द्र जी भी अपनी पत्नी के साथ उपस्थित थे। भाई श्री हरेन्द जी कार्यक्रम के आरम्भ वाले दिन ही अपनी साध्वी पत्नी के साथ आ गये थे एवं कार्यक्रम स्थल पर ही भाई श्री प्रभुदयाल जी के घर पर ही आराध्यदेव जी एवं आदरणीय श्री पुष्कर जी के साथ ही पूरे समय ठहरे थे। उस आदरणीय दम्पत्ति को आराध्यदेव जी का विछोह बड़ा ही कष्ट दे रहा था। उस दम्पत्ति ने हाथ जोडकर प्रार्थना किया कि प्रभो ! जब आपने अपने जाने का प्रोग्राम तय कर ही लिया है तो हम लोगों को भी अपने घर जाने की आज्ञा देने की कृपा करें। श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी सहज मुस्कान के साथ कहा, "हाँ लल्ला,- क्यों नहीं।" इतना कहकर श्री गुरुदेव भगवान ने भाई श्री प्रभुदयाल जी से प्रसाद मंगवाया एवं दम्पत्ति को देते हुए कहा कि 'पूर्ण आशिर्वाद है।' आराध्यदेव श्री गुरूदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्दु से कहा कि "लल्ला ! चलते–फिरते, उठते–बैठते सदैव अपने गुरू मंत्र का जप किया करो। यदि तुम ऐसा करने का प्रयास करोगे तो करूणासागर श्री प्रभु जी तुम्हारी सभी मनोकामनाओं को अवश्य ही पूरा करेंगे।" इतना कहकर श्री प्रभु जी शान्त हो गये, परन्तु ये दम्पत्ति अभी हाथ जोड़े खड़े ही थे। श्री प्रभु जी ने अपने मुखारबिन्दु से कहा कि– "लल्ला ! जो कुछ कहना हो निःसंकोच कहो।" श्री प्रभु जी की यह आज्ञा पाकर श्री हरेन्द जी ने प्रार्थना किया कि 'प्रभो ! आप यहाँ से छः बजे प्रातः के पूर्व ही निकल पड़ेंगे क्योंकि आपकी ट्रेन कालका मेल, कालका स्टेशन से प्रातः सात बजे प्रस्थान कर जायेगी। अतः हम दोनों की यह अभिलाषा है कि यदि आप का आदेश मिले तो हम लोग अपने घर से पवित्रता पूर्वक भोजन बनाकर आप को स्टेशन पर ही दे देवें। उनका यह भाव भरा प्रेम देखकर एवं उनकी यह प्रार्थना सुनकर प्रभु जी दोनों को पकड़कर अपनी तरफ खीच कर गले से लगाकर प्यार किये एवं बोले

"नहीं लल्ला ! इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अपराह्न तक आश्रम पहुँच ही जाऊँगा। तुम मेरे बच्चे हो और बेकार परेशान हो, मैं यह नहीं चाहता। तुम लोग चिन्ता मत करो, मैं समय से आश्रम पहुँच जाऊँगा।" वे दम्पत्ति कई बार प्रार्थना करते रहे एवं श्री प्रभु जी बार–बार मना करते रहे। अन्त में आदरणीय दम्पत्ति ने प्रार्थना किया कि 'प्रभो, आप अपने मुखारविन्दु से सिर्फ एक बार हाँ करने की कृपा करें।' उनकी ये अन्तिम भाव भरी प्रार्थना सुनकर श्री गुरूदेव जी महाराज मुस्कराते हुए बोले, "अच्छा लल्ला, ठीक है यदि कोई परेशानी न हो तो भोजन लेकर आ जाना।" उनकी यह आज्ञा सुनकर यह दम्पत्ति बड़े प्रसन्न हुये एवं सायं करीब सवा सात बजे अपने घर के लिए श्री गुरूदेव भगवान का चरण स्पर्श कर यात्रा आरम्भ की।

सुविज्ञ पाठकों को वहाँ की स्थिति एवं परिस्थिति के विषय में बता देना आवश्यक है। आदरणीय भाई श्री हरेन्द्र जी की अवस्था उस समय करीब पैंतालिस वर्ष थी एवं उनकी धर्मपत्नि की अवस्था भी इसी के आसपास थी। इस दम्पत्ति का निवास स्थान, कालका स्टेशन एवं श्री गुरूदेव की प्रचार स्थली की दूरी करीब त्रिभुज के प्रकार की थी। कहने का तात्पर्य यह था कि कालका रेलवे स्टेशन से प्रचार स्थली की दूरी करीब ग्यारह किलोमीटर थी और भाई श्री हरेन्द्र जी की निवास स्थली नौ किलोमीटर की दूरी पर थी। आदरणीय भाई श्री प्रभुदयाल जी करीब पौने छः बजे बैलगाड़ी से कालका स्टेशन पहुँचाने की तैयारी किये थे, जिससे ट्रेन के समय सात बजे से पूर्व स्टेशन पहुँच कर, टिकट कटाकर, रेलगाड़ी में समय से स्थान पाया जा सके।

कभी कभी नियति भी आदरणीय गुरूभक्तों की बड़ी कठिन परीक्षा लिया करती है। शायद श्री हरेन्द्र दम्पत्ति की परीक्षा की घड़ी आ ही गयी। आराध्यदेव श्री सद्‌गुरूदेव जी महाराज से भोजन स्टेशन पहुँचाने की आज्ञा प्राप्त कर सब ये दम्पत्ति योग प्रचार स्थली से अपने घर जाने की यात्रा आरम्भ किये, उसके कुछ मिनट बाद ही वर्षा आरम्भ हो गयी केवल वर्षा है तो काम चले, परन्तु आँधी तूफान के साथ वर्षा में ओले भी पड़ने आरम्भ हो गये। ओले से अपना शरीर बचाते, एवं आँधी पानी तूफान का सामना करते ये दम्पत्ति अपने घर की तरफ बढ़ रहे थे। ऊपर से शारीरिक कष्ट तो था परन्तु मन यह सोचकर बार बार आह्लादित एवं आनन्दित हो रहा था कि कल त्रिलोकीनाथ हम लोगों का भोजन ग्रहण करेंगे। इस भीतरी उत्साह के बल पर वे महान कष्ट झेलते हुए आगे बढ़ रहे थे। रास्ते में एक दुकान से उन्होंने सब्जी के लिए आलू, परवल एवं मसाला भी लिये। मौसम इतना खराब था और पानी इतना पड़ रहा था कि संध्या करीब साढ़े सात बजे के चले ये दम्पत्ति अपने घर करीब एक बजे रात्रि को पहुँचे। इनके घर पहुँचते ही बरसात भी बन्द हो गयी। अब सोने का समय नहीं था एवं त्रिलोकीनाथ का भोजन परम पवित्रता से बनाना था। अतः दोनों पति पत्नी ने स्नान करके कपड़ा बदला। गेहूँ को बीन बनाकर स्वच्छ पानी से धोया। हल्की आग पर कड़ाही में गरम करके सुखाया। इसके पूर्व गेहूँ पीसने वाली चक्की को स्वच्छ पानी से धोकर सुखाया एवं ये श्रद्धावान दम्पत्ति साथ बैठकर चक्की में गेहूँ पीसकर आटा बनाये एवं उसे पानी डालकर गूँथा। इसके बाद पत्नी ने शुद्ध घी में पूड़ी निकालना आरम्भ किया एवं पति ने सब्जी काटा एवं मसाला पीसा। पूड़ी

निकालने के बाद पत्नी ने आलू परवल की सब्जी बनाया। तब तक पति ने स्नान करके श्री गुरूदेव भगवान एवं श्री महाप्रभु जी के घर में विराजमान दिव्य स्वरूपों के आरती पूजन की तैयारी की। इसके बाद पत्नी ने नित्य क्रिया से निवृत होकर पति के साथ आरती पूजन किया। घड़ी ने पौने पाँच बजा दिये। इसके बाद जल्दी जल्दी भोज्य पदार्थ को टिफिन में रखकर घर का ताला बन्द करके ये दम्पत्ति भोज्य पदार्थ आराध्यदेव को सौंपने घर से निकल पड़े। चूंकि रात में काफी पानी पड़ा था एवं आँधी तूफान आया था अतः पेड़ पौधे भी काफी धराशायी हुए थे। ये दम्पत्ति तेजी से कालका रेलवे स्टेशन की तरफ चल रहे थे परन्तु रास्ता दुरूह होने के कारण दूरी कम ही तय हो पा रही थी। ये दम्पत्ति बार बार घड़ी की तरफ देख रहे थे एवं ज्यों ज्यों घड़ी की सुई आगे बढ़ रही थी, इनकी व्याकुलता बढ़ती ही जा रही थी कि क्या हम लोगों के ऐसे भाग्य नहीं हैं कि हम आराध्यदेव जी को अपना भोजन करा सकें। मन की इसी उधेड़बुन में ये दम्पत्ति कालका स्टेशन की तरफ दौड़ते हुए रास्ता पकड़ कर चल रहे थे। जब सात बजने में मात्र बीस मिनट बाकी थे एवं कालका रेलवे स्टेशन अभी एक किलोमीटर दूर था, ये दम्पत्ति रास्ता छोड़कर तिरछे जोते हुए खेत से जिसमें पानी भरा था, ट्रेन जाने वाली दिशा के विपरीत दिशा से रेलवे लाइन के समानान्तर दौड़ने लगे कि, यदि ट्रेन स्टेशन से छूट जायेगी तो यह तो पता लग जायेगा कि ट्रेन चली गयी क्योंकि रेलगाड़ी तो इसी लाइन से जायेगी जिसे आधार बनाकर हम लाइन के सहारे कालका रेलवे स्टेशन पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं।

अब उधर की परिस्थिति पर श्री गुरुदेव भगवान का स्मरण चिन्तन करते हुए अपना ध्यान आकृष्ट कीजियेगा। श्री गुरुदेव भगवान ने प्रातः पाँच बजे से पूर्व अपने आराध्यदेव अर्थात् हमारे आप के दादा गुरूदेव अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की आरती कर ली। उसके बाद हमारे आदरणीय भाई श्री प्रभुदयाल जी ने अपनी साध्वी पत्नी, बाल गोपालों एवं उपस्थित श्रद्धावान साधकों के साथ श्री सद्गुरूदेव भगवान की आरती की। तत्पश्चात श्री गुरुदेव जी ने आदरणीय भाई पुष्कर जी द्वारा तैयार किया गया नाश्ता लिया एवं उसके बाद श्री पुष्कर जी ने भी नाश्ता किया। सभी गुरुभाईयों ने मिलकर श्री प्रभुजी एवं श्री पुष्करजी का बिस्तर बैलगाड़ी पर लाद दिया। उसके बाद श्री सद्गुरू देव भगवान ने दादा गुरूदेव के स्वरूप की सामूहिक आरती की तथा सभी उपस्थित समुदाय ने श्री गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया एवं श्री गुरुदेव ने सबको बारी-बारी से आशीर्वाद एवं प्रसाद दिया। इतना हो जाने के बाद श्री गुरुदेव जी महाराज बैलगाड़ी पर कालका स्टेशन जाने के लिए रवाना हुए। उसके बाद श्री पुष्कर जी बैलगाड़ी पर बैठे तथा भाई श्री प्रभुदयाल जी अपने दो बच्चों के साथ श्री गुरुदेव भगवान को कालका रेलवे स्टेशन पहुँचाने हेतु सवार हुए एवं फिर बैलगाड़ी कालका रेलवे स्टेशन के लिए चल दी। श्री गुरुदेव भगवान करीब पौने सात बजे कालका रेलवे स्टेशन पहुँच गये। गाड़ी रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म नम्बर एक पर खड़ी थी एवं एक साफ सुथरे डिब्बे में श्री गुरुदेव का सामान रखकर सीट पर श्री गुरुदेव भगवान के बैठने के लिए कम्बल

बिछाकर आसन लगा दिया गया। सात बजने में पाँच मिनट देर थी तो श्री गुरुदेव अपने आसन पर गाड़ी में सवार हो गये। ठीक सात बजे गाड़ी का सिग्नल हुआ एवं गार्ड ने सीटी बजायी। श्री प्रभु दयाल जी जो अभी श्री गुरुदेव के पास ही खड़े थे, जल्दी जल्दी प्रणाम कर डिब्बे से बाहर निकल गये तथा गाड़ी ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की श्री गुरुदेव भगवान ने डिब्बे के दरवाजे पर खड़े होकर प्लेटफार्म की तरफ मुख करके अपने वरदहस्तों से श्री प्रभुदयाल एवं उनके बाल गोपालों को तब तक आशीर्वाद दिया जब तक वे सभी दिखलायी देते रहे एवं उसके बाद जाकर अपनी सीट पर अर्धपद्मासन की स्थिति में बैठ गये। बैठने के एक मिनट बाद ही श्री गुरुदेव ने कहा कि "लल्ला पुष्कर ! तुम दाहिने तरफ गेट पर खड़े हो जाओ एवं ध्यान से उधर की तरफ देखते रहो, कहीं ऐसा न हो कि रात वाले तुम्हारे गुरू भाई बहन हम लोगों का भोजन लेकर आ रहे हो।" आराध्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री पुष्कर जी दाहिनी तरफ वाले गेट पर खड़े होकर ध्यान से देखने लगे। इतने समय में गाड़ी क्रमशः तेज रफ्तार पकड़ते हुए आउटर सिग्नल पार कर गयी। आउटर सिग्नल पार करने के बाद गाड़ी ने अपनी पूरी गति से यात्रा करना आरम्भ किया। गाड़ी को अपनी स्पीड पकड़े अभी मात्र दो या तीन मिनट ही हुए थे कि काफी दूरी पर एक पति–पत्नी हाथ में टिफिन का डिब्बा लिए दिखलायी दिये, कुछ करीब आने पर श्री पुष्कर जी ने जोर से जल्दी में आवाज लगायी–'गुरु जी, रात वाले गुरुभाई बहन आ रहे हैं।'

आदरणीय भाई श्री पुष्कर जी की आवाज सुनकर श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी ओजस्वी वाणी से बुलन्द आवाज एवं कम स्पीड में कहा, "अच्छा, हमारे बच्चे आ रहे हैं।" इतना कहते हुए श्री प्रभु जी, गेट पर आकर खड़े हो गये जहाँ श्री पुष्कर जी खड़े थे। इसके साथ ही पुष्कर जी वह स्थान छोड़कर किनारे खड़े हो गये। श्री गुरुदेव भगवान के मुखारविन्दु से यह शब्द निकलते ही कि "अच्छा, हमारे बच्चे आ रहे हैं" गाड़ी ने इमरजेन्सी ब्रेक जैसी स्थिति से रुकना आरम्भ किया एवं दो तीन बार हड़बड़–हड़बड़ कर मात्र बीस गज चलकर रुक गयी। श्री गुरुदेव भगवान ने श्री हरेन्द्र दम्पत्ति को आवाज लगायी, जो अब साफ दिखलायी दे रहे थे कि "लल्ला ! आ जाओ।" चूँकि गाड़ी रुक गयी थी अतः पुष्कर जी नीचे उतर गये एवं ये दम्पत्ति दौड़े–दौड़े आकर श्री गुरुदेव को प्रणाम किया एवं उनके आदेशानुसार गाड़ी में चढ़ गये। उनके गाड़ी में चढ़ने के बाद श्री गुरुदेव अपने रेलगाड़ी वाले आसन पर जाकर पुनः अर्ध पद्मासन में विराजमान हो गये। साथ ही भाई हरेन्द्र दम्पत्ति को सामने वाली सीट पर बैठने का आदेश दिये। यद्यपि ये दम्पत्ति संकोच कर रहे थे परन्तु श्री प्रभुजी ने कहा कि "क्या तुम लोग गुरु आज्ञा का पालन नहीं करोगे।" श्री गुरुदेव का यह वाक्य सुनकर ये दम्पत्ति श्री गुरुदेव की सामने वाली सीट पर बैठ गये। इसके बाद श्री गुरुदेव ने विस्तृत हालचाल पूछना आरम्भ किया। वे लगातार करीब पैंतालीस मिनट तक अपने लाड़ले शिष्यों का कुशल क्षेम पूछते रहे एवं उनके योग प्रचार स्थली से यात्रा आरम्भ करने से लेकर इस मुलाकात तक का पूरा विवरण सुने। बीच बीच में प्यार के साथ समझाते भी रहे कि "लल्ला, इतना कष्ट एवं परेशानी

तुमको नहीं उठानी चाहिए थी।" दम्पत्ति हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रहे थे कि 'हे दयानिधान !-आप के लिए कष्ट उठाना तो हमारे सौभाग्य की बात है' तथा इसके साथ ही उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। इस सम्बन्ध में गुरू भाई बहनों को यह तथ्य बताना समीचीन होगा कि हमारे इस आदरणीय दम्पत्ति को कोई सन्तान नहीं है। बावजूद ये दम्पत्ति श्री गुरुदेव के चरण कमलों एवं उनकी श्रद्धा के पुतले हैं। यह उस दयानिधान की अहैतुकी कृपा का ही प्रसाद कहा जायेगा। हर्ष के साथ आश्चर्य तो यह हो रहा था कि आराध्यदेव मानो सफर करने वाली गाड़ी में नहीं बैठे हैं वरन आश्रम के अपने गुरु निवास या हमारे किसी गुरुभाई के पूजा कक्ष में बैठकर स्थिर मन से बात कर रहे हों।

सुविज्ञ पाठक इस रहस्य से भली प्रकार परिचित है कि "कालका–हावड़ा–कालका" मेल एक इम्पोर्टेन्ट ट्रेन है एवं उसके अनायास रुकने पर गार्ड, ड्राइवर एवं सभी रेल स्टाफ अनहोनी घटना से चिन्तित हो उठा। संयोग से इस ट्रेन में और चेकिंग स्टाफ के अलावा मजिस्ट्रेट एवं उससे सम्बन्धित चेकिंग स्टाफ एवं पुलिस बल भी चल रहा था। गाड़ी रुकने के तुरंत बाद ट्रेन के ड्राइवर एवं गार्ड तेजी से चलते हुए एक दूसरे से मिले एवं दोनों ने एक दूसरे से पूछा कि 'आपने ट्रेन क्यों रोका है।' जब यह तथ्य उजागर हो गया कि ड्राइवर एवं गार्ड किसी ने ट्रेन नहीं रोका है तो दोनों वहीं से एक दूसरे से विपरित दिशा में चलकर यह चेक करने लगे कि किसी यात्री एवं डिब्बे की चेन पुलिंग तो नहीं हुयी है। तेजी से चलकर दोनों ने चेक कर लिया एवं पाया कि किसी जगह चेन पुलिंग नहीं की गयी है। इसके पश्चात् दोनों आपस में गहन चिन्तन करने लगे कि जब हम दोनों में से किसी ने ट्रेन को नहीं रोका एवं ट्रेन में कहीं चेन पुलिंग नहीं हुयी तथा किसी डिब्बे का वैक्यूम वाल्व नहीं खुला तो ट्रेन रुकी तो कैसे रुकी ? काफी गहन चिन्तन के बाद गार्ड ड्राइवर ने यह मन बनाया कि एक बार फिर सूक्ष्मता से चेक किया जाय। करीब दस मिनट की कम्पलीट चेकिंग के बाद भी कालका मेल ट्रेन रुकने का कोई कारण नहीं दिखलायी दिया। इसी उधेड़बुन में वे एक स्थान पर खड़े होकर चिन्ताग्रस्त थे। धीरे-धीरे गार्ड एवं ड्राइवर जहाँ खड़े थे वहाँ गाड़ी का सभी चेकिंग स्टाफ पहुँच गया। उसके चन्द मिनट बाद मजिस्ट्रेट भी अपने चेकिंग स्टाफ एवं पुलिस बल के साथ पहुँच गया। ये सभी आराध्यदेव जी वाले डिब्बे के पास वाले डिब्बे के सामने खड़े थे। सब आपस में यही बात कर रहे थे कि गाड़ी रुकने का कोई भी औचित्य एवं कारण समझ में नहीं आ रहा है। ड्राइवर ने कहा कि 'अच्छा, हम गाड़ी चलाने जा रहे हैं, आप लोग जल्दी गाड़ी पर सवार हो जाइये।' सभी लोग गाड़ी पर सवार हो गये एवं ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट करने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया परन्तु गाड़ी स्टार्ट ही नहीं हुयी। वह इंजन से नीचे उतर गया एवं बोला, 'अब बड़ी आफत आ गयी, अब तो गाड़ी चालू ही नहीं हो रही है।' रेल कर्मचारी एवं गाड़ी के अधिकांश यात्री ट्रेन से नीचे उतर आये एवं रेल कर्मचारियों की आपस की बात सुनने लगे। वे सब बार-बार यही कह रहे थे कि गाड़ी तो मान लो किसी कारण से रुक गयी परन्तु अब तो इसे चालू हो जाना चाहिए।

इसी भीड़ में हमारे आदरणीय भाई श्री पुष्कर जी भी जाकर खड़े हो गये। उपस्थित रेल

कर्मचारियों के हतोत्साहित एवं निराश मनोभाव से बार-बार यह कहने पर कि पता नहीं यह इम्पोर्टेन्ट ट्रेन क्यों रुकी है एवं चालू क्यों नहीं हो रही है, आखिर हमारे भाई से सत्य नहीं छिप सका एवं उन्होंने कह ही दिया कि 'यह ट्रेन हमारे श्री गुरुदेव के संकल्प से रुकी है एवं उन्हीं के संकल्प से चालू होगी।' धोती कुर्ता पहने साधारण मूर्ख किसान के सदृश दिखने वाले भाई पुष्कर जी के यह वाक्य सुनकर टाई हैट लगाये मजिस्ट्रेट ने कहा, 'इस मूर्ख को देखो, यह कह रहा है कि यह गाड़ी इसके गुरुदेव के संकल्प से रुकी है।' मजिस्ट्रेट का यह वाक्य सुनकर श्री पुष्कर जी शान्त हो गये। इसके बाद भी करीब पन्द्रह मिनट तक सभी रेल कर्मचारी बारी-बारी से ट्रेन चेक करते रहे एवं आपस में विचार करते रहे। जब अपने पुरुषार्थ से वे सभी थक गये तो मजिस्ट्रेट ने कहा कि 'चलो इस मूर्ख की बात को मानकर देखा जाय।' उसने कहा 'अरे सुन इधर, तुम्हारा गुरु कहाँ है, चलो दिखाओ।' आगे आगे पुष्कर जी, उनके पीछे मजिस्ट्रेट एवं उसके साथ गार्ड, ड्राइवर, रेल स्टाफ एवं पुलिस दल भी श्री गुरुदेव के डिब्बे की तरफ चल पड़ा। श्री पुष्कर जी डिब्बे में चढ़ गये एवं उनके साथ ही ड्राइवर एवं गार्ड ट्रेन में चढ़ गये। मजिस्ट्रेट ने कहा कि बाकी सब लोग नीचे रहें एवं स्वयं एक पुलिस सब इंस्पेक्टर के साथ डिब्बे में चढ़ा। डिब्बे में चढ़ने के बाद उसने कड़ी आवाज में पूछा कि 'बोल तुम्हारा गुरु कहाँ है ?' श्री पुष्कर जी ने हाथ जोड़कर श्री गुरुदेव की तरफ इशारा करते हुए कहा कि "यही हमारे श्री गुरुदेव हैं" दाढ़ी मूँछ एवं सिर के सफाचट बाल के साथ बाह्य नजरों से धनाढ्य सेठ से दिखने वाले आराध्यदेव उस अभागे मजिस्ट्रेट को श्री सद्‌गुरुदेव कैसे जान पड़ते। उसने कोई अभिवादन भी नहीं किया। श्री प्रभु जी से बोला कि 'तुम्हारा यह चेला कह रहा है कि गाड़ी तुम्हारे ही संकल्प से रुकी है एवं तुम्हारे ही संकल्प से चालू होगी।' उसकी अटपटी एवं अमर्यादित बात सुनकर दीनानाथ मुस्कुराते हुए बोले कि "अच्छा, यह ऐसा कह रहा है। इसके बाद उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा कि "लल्ला ! प्रत्येक सद्‌शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने श्री सद्‌गुरु की प्रशंसा करे उसका गुणगान करे। यह अपने शिष्य धर्म का बखूबी पालन कर रहा है।' त्रिलोकीनाथ के ये वाक्य मजिस्ट्रेट को अच्छे नहीं लग रहे थे। उसने कहा कि 'समय बर्बाद मत करो। जानते हो कितनी इम्पोर्टेन्ट ट्रेन है, जिस पर तुम बैठे हो ? यदि तुम्हारे अन्दर कोई शक्ति है तो ट्रेन को जल्दी चालू करो।' उसकी बेहद बेहूदा बातों को , जिसे निम्न श्रेणी का मनुष्य भी बर्दाश्त नहीं करेगा, को सुनकर अनाथानाथ मुस्कुराते हुए बोले, "लल्ला हरेन्द्र सौभाग्यवती इन्दू ! तुम लोग ट्रेन से उतरकर अपने घर जाओ।" श्रद्धावान दम्पत्ति ने प्रणाम किया एवं आराध्यदेव जी ने आशीर्वाद देकर उन्हें ट्रेन से नीचे उतारा। इतना कहने के बाद त्रिलोकीनाथ जी मुस्कुराते हुए बोले, "अच्छा ट्रेन चलो।" श्री मुख की आज्ञा निर्जीव ट्रेन ने मानो अनन्यनिष्ठ गुरुभक्त शिष्य की तरह स्वीकार किया एवं जिस आवाज तथा हड़बड़ी के साथ रुकी थी उसी आवाज हड़बड़ी एवं स्पीड से चलना आरम्भ कर दिया। मानों भूचाल-सा आ गया। सभी सवारियाँ हिलोरे खाने लगी एवं गिरते-गिरते बची। ट्रेन ने मात्र दो मिनट में पूरी स्पीड पकड़ ली। अब मजिस्ट्रेट का चेहरा देखने ही लायक था। लगता था उस पर मानो गौ हत्या का पाप लगा है। उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहा परन्तु इसके पूर्व

ही दो रेल कर्मचारी श्री गुरूदेव के दोनों चरण कमल पकड़कर आर्त स्वर में प्रार्थना कर रहे थे कि 'महाराज, ट्रेन को जल्दी रोको, महाराज ट्रेन को जल्दी रोको।' मजिस्ट्रेट जो हाथ जोड़े ऐसा लग रहा था जैसे वह गोहत्या का प्रायश्चित करना चाहता है। श्री नाथ जी ने कहा, "लल्ला ! अनजान में हुयी गलती के लिए क्षोभ करना व्यर्थ है, मेरे मन में तुम्हारे प्रति कोई अन्य भाव नहीं है बल्कि तुम्हारे सर्वकल्याण का भाव है। अनाथनाथ श्री प्रभु जी तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण करें यही हमारी मनोकामना है।"

श्री सद्गुरू देव जी महाराज मजिस्ट्रेट साहब को यह समझाते हुये अभय प्रदान कर रहे थे एवं उनके दोनों चरण कमल पकड़े दो रेल कर्मचारी बड़ी तेज आवाज में प्रार्थना कर रहे थे, 'महाराज, जल्दी ट्रेन को रोकिये। महाराज, जल्दी ट्रेन को रोकिये।' उनकी तरफ मुखातिब होते हुए श्री गुरूदेव भगवान ने मुस्कुराते हुए कहा कि "लल्ला ! अभी तो तुम लोग कह रहे थे कि ट्रेन को चालू किया जाय एवं अभी कह रहे हो कि ट्रेन को रोका जाय, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है।" "योगमाया समावृता" की स्थूलमूर्ति श्री गुरूदेव जी लोकाचार एवं अनभिज्ञता प्रदर्शित करने के लिए ऐसे लीला चरित्र किया ही करते थे। आराध्यदेव के मुखारबिन्दु से ये वाक्य सुनकर दोनों चरण कमल पकड़े कर्मचारियों ने जोर जोर से प्रार्थना करते हुए कहना आरम्भ किया, कि 'भगवन् ! पहले ट्रेन रोकिये फिर हम कारण बताते हैं वरना अनर्थ हो जायेगा।' आराध्यदेव जी ने अपनी मधुर मुस्कान से कहा कि 'अच्छा, रुक जा ट्रेन।' उनका वाक्य समाप्त होते ही ट्रेन रुक गयी। ट्रेन रुकने के साथ ही डिब्बे में उपस्थित सभी सवारियों ने ट्रेन की फर्श पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद चरण पकड़ने वाले दोनों कर्मचारी हाथ जोड़कर खड़े हुए एवं अत्यन्त विनीत शब्दों में प्रार्थना किये कि 'हे सर्वशक्तिमान भगवन् ! हम दोनों इस इम्पार्टेन्ट ट्रेन के ड्राइवर हैं। इस समय ट्रेन के इंजन वाले केबिन में कोई ड्राइवर नहीं है। अगला स्टेशन आने वाला है, आप के संकल्प से चलने वाली यह ट्रेन अगर अगले स्टेशन पर नहीं रुकी तो हाहाकर मच जायेगा एवं कोई भी भीषण दुर्घटना हो सकती है। अतः आप हमें आशीर्वाद देने की कृपा करें कि हम लोग इंजन के केबिन में जाकर ट्रेन चलाने का कार्य कर सकें। इतनी प्रार्थना करने के बाद दोनों ने साष्टांग प्रणाम किया एवं श्री गुरूदेव ने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे अपने केबिन में जाकर ड्राइवर का कार्य प्रारम्भ किए। इस कालका मेल ट्रेन के ड्राइवरों को क्या पता कि सिद्ध योगेश्वर के संकल्प से चलने वाली ट्रेन नियमानुसार ही चलेगी, कोई दुर्घटना नहीं करेगी। मजिस्ट्रेट साहब प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े खड़े थे, उन्हें गुरूदेव ने बैठने का आदेश दिया, वे नहीं बैठ रहे थे, उनसे गुरूदेव ने कहा "लल्ला ! तुम्हारा खड़ा रहना शोभा नहीं देता, तुम बैठ जाओ।" वे ट्रेन की फर्श पर बैठ गये, जिनकी बाँह पकड़कर श्री गुरूदेव ने सीट पर बैठाया। इस प्रकार यह घटनाक्रम पूर्ण हुआ। किसी अनुभवी साधक ने ठीक ही कहा है कि–

"फकीरों की झोली में है अब भी सब कुछ।
मगर जाँच लेते हैं देते हैं तब कुछ।।"

* * *

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र

आविर्भाव एवं बाल लीलायें

पुण्यभूमि भारत में जगन्नियन्ता परमेश्वर की विशिष्ट विभूतियाँ जन कल्याणार्थ समय–समय पर अवतरित होती रही है। कभी राम रूप में, कभी कृष्ण रूप में, कभी बुद्ध रूप में और कभी किसी सर्व–शक्तिमान सद्गुरु के रूप में। प्रभु रामलाल जी महाराज भी उन्हीं विशिष्ट विभूतियों में से एक हैं। आप लगभग छः हजार वर्ष से हिमालय में समाधिस्थ हैं और कलियुग के आरम्भ से लेकर अब तक काय निर्माण सिद्धि द्वारा अनेकों शरीर धारण करके संस्कारी आत्माओं का उद्धार करते आ रहे हैं। शंकर के अवतार जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य जी महाराज, योगिराज मत्स्येन्द्र नाथ, गुरु नानक देव जी, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त कबीर, योगिराज नित्यानन्द जी आदि इस युग के प्रमुख सिद्धयोगियों के अन्दर भी प्रभु जी ही नजर आते हैं। योगिराज लाहड़ी जी महाराज को योग दीक्षा देने के लिये हिमालय में स्वर्ण महल की रचना करने वाले महावतार बाबा नाम से प्रसिद्ध महायोगी कोई अन्य नहीं बल्कि प्रभु रामलाल महाराज ही थे। अनुभवी योगियों का तो यहाँ तक कहना है कि आज के घोर कलिकाल में जहाँ कहीं भी यथार्थ रूप में योग दिखाई दे रहा है और सिद्धयोग का प्रकाश हो रहा है वह सब श्री प्रभु जी का ही प्रकाश है और उनकी कृपा से ही सब कुछ हो रहा है।

लोकलीला के लिये आपने सम्वत् १६४५ (सन् १८८८) में चैत्रशुक्ल नवमी (श्री रामनवमी) गुरुवार को पंजाब के प्रसिद्ध धार्मिक नगर अमृतसर में एक तपस्वी ब्राह्मण कुल में पंडित गंडाराम ज्योतिषी के घर पर स्वनाम धन्या परम सौभाग्य शालिनी माता भागवन्ती देवी जी की कोख से जन्म लिया। आप बचपन से ही योगेश्वर्य सम्पन्न थे। अतः आपकी बाल लीलायें बड़ी अलौकिक हुआ करती थी।

तीन वर्ष की अल्पायु में एक मरणासन्न वृद्धा को दर्शन मात्र से अभय दान देना, आठ वर्ष की आयु में एक सिद्ध योगिराज द्वारा सम्मानित होना तथा रामतीर्थ मार्ग पर अनेक शरीर धारण करके अपने विरोधियों को परास्त करना, बारह वर्ष की आयु में ज्योतिष और आयुर्वेद शास्त्र में पारंगत हो जाना, श्रवण मात्र से ही सभी शास्त्रीय सिद्धान्तों को कंठस्थ कर लेना, कटोरी में तेल के स्थान पर जल भरकर उस जल से दीपक जलाना, किसी व्यक्ति के साँप या बिच्छू द्वारा डसे जाने पर उसे एक चाँटा लगाकर पूर्ण स्वस्थ कर देना आदि घटनाएँ आपका अनादि सिद्ध होना प्रमाणित करती हैं।

योगियों की खोज में घर से पलायन एवं काशी में विद्याध्ययन

बचपन से ही उनके मन में योगी महात्माओं के प्रति बड़ा आकर्षण था। वे दर्शन करने के

बहाने स्वयं उन महात्माओं को दर्शन देकर उनका कल्याण किया करते थे। प्रबल वैराग्य के कारण चौदह वर्ष की आयु में वे एक दिन चुपके से घर से निकल पड़े और काशी जा पहुँचे। वहाँ पतित पावनी गंगा जी के निर्मल जल में स्नान करके तथा भगवान विश्वनाथ जी के दर्शन करके उन्हें बड़ी शान्ति मिली। दो–तीन दिन तक वे वहाँ गंगा जी में स्नान करके वहीं एकान्त तट पर भजन करते रहे और वहां के मन्दिरों के दर्शन करते रहे। वे रात्रि को धर्मशाला में विश्राम कर लिया करते थे। तीन दिन पश्चात् विद्याध्ययन के लिये अच्छे गुरुकुल की तलाश करते–करते उस समय के प्रकाण्ड विद्वान महा–महोपाध्याय पंडित शिव कुमार शास्त्री जी के पास पहुंचे और वहां रह कर विद्याध्ययन करने लगे। एक दिन आपने अत्यन्त विनीत भाव से पंडित जी से निवेदन किया—आचार्य जी ! मेरी योग विद्या में बड़ी रुचि है इसलिये आप मुझे योग शास्त्र पढ़ाने की कृपा कीजिये। इस पर आचार्य जी बोले—मैं तुम्हें योग शास्त्र पढ़ा सकता हूँ पर क्रियात्मक रूप से योग शास्त्र की शिक्षा किसी अनुभवी योगी से ही प्राप्त की जा सकती है। योग विद्या में मेरा क्रियात्मक अनुभव नहीं है। इसलिये इस विषय का अध्ययन मैं तुम्हें नहीं कराऊँगा। तब प्रभु जी व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों का अध्ययन करने लगे। आप दिन भर मन लगाकर अध्ययन करते रहते और मध्याह्नोपरान्त ४–५ बजे के लगभग भ्रमण करते हुए गंगा तट पर चले जाते थे और वहाँ साधु महात्माओं के साथ घण्टों तक आध्यात्मिक चर्चा करते रहते थे। दैवयोग से वहां एक दिन आपका गंगातट पर रहने वाले विश्व विख्यात सन्त तैलंग स्वामी जी से साक्षात्कार हो गया। उन दिनों उन के यौगिक चमत्कारों की चर्चा काशी नगरी में सर्वत्र फैली हुई थी। वे गंगा जी के जल से ऊपर चलते हुए उसे आराम से पार कर जाते थे और उनके पैर तक जल में डूबते नहीं थे। वे एक महीने तक की जल समाधि लेकर गंगा जी में पड़े रहते थे। उस समय उनकी आयु ३०० वर्ष की थी। वे प्रायः मौन रहते थे तथा किसी से अधिक मिलते जुलते नहीं थे। यहाँ तक कि अपने प्रिय शिष्य रामकृष्ण परमहंस जी को योगोपदेश देने के लिए उन्होंने कुल १५ मिनट का समय दिया था। श्री प्रभु जी का जब उनसे प्रथम बार साक्षात्कार हुआ तो उन्होंने आपको देखते ही आपके अन्दर छिपे परमतत्व को पहचान लिया था। उन्होंने आपको आदर पूर्वक अपने पास बैठाया और बहुत देर तक आपसे योग विषयक चर्चा करते रहे। उस दिन के बाद प्रभु जी शाम के समय नित्य प्रति उसके पास जाया करते थे और सत्संग का जी भरकर आनन्द लेते थे। लोग यह देखकर आश्चर्य चकित होते थे कि तीन सौ वर्ष की आयु के वे विरक्त सन्त चौदह वर्षीय एक बालक के साथ मित्र का सा व्यवहार करते हुए उसके साथ घण्टों तक आध्यात्मिक चर्चा करते रहते हैं। स्वामी जी का संग प्राप्त करते प्रभु जी बड़े आनन्दित रहा करते थे। संयोगवश एक दिन गंगातट पर भ्रमण करते आपको एक परिचित व्यक्ति ने देख लिया। वह आपके पिता जी का मित्र था और रेलवे में गार्ड था। वह बड़ा प्रेम प्रदर्शित करता हुआ आपसे मिला और प्यार–प्यार में आपसे सारी बातें पूछ ली। जब उसे पता चला कि आप घर से भागकर आये हैं तो उसने बड़े प्यार से समझा बुझाकर

आपको घर लौटने के लिये राजी कर दिया। तब वे दोनों उसी रात्रि की गाड़ी से अमृतसर रवाना हो गये और अगले दिन सायंकाल वहाँ पहुँच गये। गंडाराम जी ने अपने मित्र का बड़ा आभार व्यक्त किया। अपने खोये हुए पुत्र को पाकर पं. गंडाराम जी और उनकी पत्नी के हर्ष का ठिकाना न रहा। पूरे परिवार में प्रसन्नता की लहर फैल गई किन्तु यह प्रसन्नता का वातावरण अधिक दिन तक नहीं रहा। एक सप्ताह के बाद ही प्रभु रामलाल जी पुनः घर से भागकर हरिद्वार चले गए और वहाँ कनखल में रहकर विद्याध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनों में आपके घर वालों को आपके हरिद्वार में होने की सूचना मिल गई तो आपके ज्येष्ठ भ्राता पं. रामतीर्थ जी वहाँ पहुँचकर आपको जबरदस्ती घर लिवा लाये।

(३) कुरुक्षेत्र में विद्याध्ययन

उनके बढ़ते हुए वैराग के भाव के देखकर परिवार वाले बड़े चिन्तित रहा करते थे। इन सबको यह भय था कि कहीं उनका पुत्र हमेशा के लिए घर छोड़कर वनों में न चला जाए। उन्होंने उनका विवाह कर देने का निश्चय किया। उनका अनुमान था कि विवाह के पश्चात् उनके पुत्र के विचारों में परिवर्तन आ जाएगा।

इस निश्चय के अनुसार सम्वत् १९६० में १५ वर्ष की अल्पायु में प्रभु जी का विवाह एक कुलीन कन्या सुश्री सुभद्रा देवी जी के साथ कर दिया गया। विवाह हो जाने पर भी उनके मन में वैराग्य की भावनाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती गयीं। उनकी दिनचर्या सन्तों की सी थी। उनका अधिकांश समय शास्त्रों के अध्ययन और मनन में व्यतीत होता था।

उन्हीं दिनों प्रभु जी ने पं. बलराम जी की विद्वत्ता की चर्चा सुनी तो वे उनके पास थानेसर (कुरुक्षेत्र) चले गये और उनसे विद्याध्ययन करने लगे। यहां उनकी दिनचर्या एक आदर्श शिष्य के समान थी। वे बड़ी लगन से पढ़ते थे और पढ़ाई के अतिरिक्त समय में आचार्य जी की सेवा किया करते थे।

एक दिन वे आचार्य जी के पशुओं के लिए चारा काटने के लिए गए। अचानक वर्षा हो जाने के कारण मार्ग में कीचड़ हो गया। सिर पर घास का भारी बोझ होने के कारण वे कई बार फिसलते–फिसलते बचे फिर भी उन्होंने जैसे–तैसे वह चारा आचार्य जी के घर तक पहुँचा दिया। तब अत्यधिक थकावट के कारण वे विश्राम करने लग गए। अतः दोपहर की कक्षा में उपस्थित नहीं हो सके। आचार्य जी ने उन्हें बुलाने के लिए अन्य विद्यार्थियों को भेजा तो वहाँ का विचित्र दृश्य देखकर वे लोग हतप्रभ हो गए।

प्रभु जी भूमि पर लेटे हुए थे उनके सिर पर अपने फन की छाया किए हुए एक भयंकर काला नाग वहाँ बैठा हुआ था। उन सभी ने साहस कर प्रभु जी को जगा दिया। उनके उठते ही वह नाग भी अदृश्य हो गया।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् प्रभु जी को कुछ धन की आवश्यकता अनुभव हुई। उन्होंने कागज पर एक विज्ञापन लिखकर चौराहे पर लगा दिया। उसमें लिखा था–"ज्योतिष के विषय

में जिसने जो कुछ पूछना हो वह आकर हम से पूछ सकता है।" विज्ञापन को पढ़कर अगले ही दिन एक सेठजी आ गए और वे प्रभु जी को अपने घर ले गए। प्रभु जी ने उनकी जन्मपत्री को देखकर उनके वर्तमान एवं भावी जीवन के बारे में सारी बातें सत्य–सत्य बतला दी। उनके जीवन में अब तक घटित हुई घटनायें भी उन्होंने ज्यों की त्यों बतला दी। यह देखकर सेठ बड़ा प्रभावित हुआ। उसने प्रभु जी का बड़ा आदर किया और अच्छी दक्षिणा देकर सम्मान पूर्वक विदा किया। उस सेठ से प्रशंसा सुनकर बहुत से लोग वहाँ आने आरम्भ हो गए। आचार्य जी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने प्रभु जी को सभी प्रकार के सेवा कार्य से मुक्त कर दिया और अपने निकट ही उनका तख्त लगवाकर उन्हें वहीं अपना अध्ययन काम करते हुए ज्योतिष का कार्य भी करते रहने की आज्ञा दी। इस कार्य से होने वाली समस्त आय को प्रभु जी अपने आचार्य जी को भेंट कर दिया करते थे। उनकी दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई ख्याति को देखकर उस पाठशाला के एक छात्र ने सोचा कि जब राम लाल अभी इतनी छोटी आयु में ज्योतिष शास्त्र के फलादेश में इतने प्रवीण हैं तो इनके पिता पं. गंडाराम ज्योतिषी जी निश्चित ही ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान होंगे। अतः उनके पास जाकर ज्योतिष शास्त्र पढ़ना चाहिए। वह छात्र प्रभु रामलाल जी से किसी बहाने उनके घर का पता पूछकर चुपके से अमृतसर चला गया। वहाँ पहुँचकर उनसे प्रभु जी के पूज्य पिता पं. गंडाराम जी का सादर अभिवादन करके उन्हें अपना परिचय दिया, अपने आने का प्रयोजन बताया तथा रामलाल जी का विस्तृत समाचार पाकर पं. गंडाराम जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस छात्र को शिष्य रूप में अपने पास रख लिया और अपने ज्येष्ठ पुत्र पं. तीर्थराम को कुरुक्षेत्र भेजकर प्रभु रामलाल जी घर वापस बुला लिया। अपने पूज्य पिता जी की आज्ञा का पालन करते हुए वे अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर अगले दिन अमृतसर लौट आये और उसके बाद विरक्त भाव से दो तीन वर्ष तक घर पर रहे। घर में रहते हुए आपकी दिनचर्या एक विरक्त सन्त की सी थी। आपका सारा समय स्वाध्याय या सत्संग में व्यतीत होता था।

घर त्यागकर सद्गुरू की खोज में हिमालय यात्रा और देशाटन

सम्वत् १९६४ में आपके पूज्य पिता गंडाराम जी का स्वर्गवास हो गया। इस घटना से उनका वैराग्यभाव और अधिक प्रबल हो गया। अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हो जाने के कुछ ही दिन बाद १६ वर्ष की आयु में आप घर–परिवार त्याग कर योगी गुरू की खोज में हिमालय की यात्रा पर चल पड़े। आप सीधे हरिद्वार गये। एक–दो दिन वहाँ रुक कर ऋषीकेश चले गये। वहाँ पंजाब–सिन्ध क्षेत्र में ठहरे। वहां से लक्ष्मण झूला होते हुये आपने ब्रह्मपुरी की ओर प्रस्थान किया। रात्रि को प्रसिद्ध वशिष्ठ गुफा में विश्राम किया। अगले दिन प्रातः गंगा जी के परम पावन, निर्मल एवं शीतल जल में स्नान करके आपने गंगा जी के तट पर स्थित एक विस्तृत एवं समतल शिला पर बैठकर ध्यानाभ्यास किया। तदनन्तर भूख–प्यास की परवाह किये बिना आप योगी गुरू की प्राप्ति के लिए अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ लगन से अग्रसर हुए। तीन दिन तक

आपको कुछ भी भोजन उपलब्ध नहीं हुआ। फिर भी आप केवल जल पर निर्भर रहकर ब्रह्मपुरी के निर्जन एवं हाथी, शेर आदि हिंसक जन्तुओं से संकुल अत्यन्त भयानक एवं दुर्गम वनों को पार करते हुए आगे बढ़ते रहे। संयोग वश उनकी भेंट लाहोर निवासी गंगाराम नाम के एक विरक्त गृहस्थी से हुई जो कि किसी सिद्ध महापुरुष के दर्शनार्थ घर से निकला हुआ था। बस फिर क्या था। गंगाराम जी के साथ हो लिये। दोनों साथ–साथ चलते रहे। उसी रात्रि को आप दोनों हिंसक जीवों के प्रहार के भय से एक वृक्ष पर चढ़कर आराम करने लगे तो आपको लगभग एक मील की दूरी पर आग नजर आई, आप लोग तत्काल उस दिशा की ओर चल दिये और आधे घण्टे में उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ धूना जल रहा था, उसके साथ ही एक गुफा थी, गुफा के द्वार के बाहर एक चिमटा गढ़ा हुआ था। अपनी कल्पना को साकार हुई जानकर आप दोनों शान्त भाव से सन्त मिलन की प्रतीक्षा करने लगे। महात्मा जी ने प्रातः ब्रह्म मुहुर्त में गुफा से निकलकर दर्शन दिये और उन्होंने एक अद्भुत शक्ति सम्पन्न लोटा देते हुये कहा– आप लोग इस लोटे को रखिये यह आपकी हर प्रकार की आवश्यकता को पूरा करेगा। उन्होंने सर्वप्रथम क्षुधानिवृत्ति हेतु लोटे से भोजन व्यवस्था करने को कहा। उनके आदेश से तत्काल भोजन सामग्री आ गई। भोजनोपरान्त गंगाराम ने लोटे से चरस, तम्बाकू तथा अन्यान्य कई चीजें माँगी जो तत्काल उपलब्ध हो गई। महात्मा जी से विस्तृत वार्तालाप हो जाने के बाद जब प्रभु जी को पता चला कि–वे महात्मा प्रतीकोपासक हैं तथा सिद्धियों को प्राप्त करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य है तो उन्होंने वहाँ ठहरना उचित नही समझा और वे तत्काल वहाँ से चल दिये। गंगाराम लोटे के मोह में अब कहीं नही जाना चाहता था। अतः वहीं रुक गया। आगे चलकर प्रभुजी की भेंट योगिराज हीरागिरि जी से हुई जो उस पहाड़ की चोटी पर एक गुफा में रहते थे। वे प्रभु जी को सम्मान पूर्वक अपनी कुटिया पर ले गये और उन्हें अपने पास ठहरा लिया। प्रभु जी को वह स्थान बड़ा पसन्द आया, उन्होंने कुछ दिन वहाँ एकान्त में रहने का निश्चय किया और वहीं रहने लगे। उस पहाड़ के सामने वाले पहाड़ पर हीरागिरि नामक एक महात्मा रहते थे। आप प्रातः तीन बजे "हर हर महादेव" की ध्वनि का उच्चारण करते हुए गंगा स्नान के निकल पड़ते थे। उधर हीरागिरि जी भी "हर हर गंगे" ध्वनि का उच्चारण करके अपने स्थान से चल पड़ते थे। कुछ दूरी पर दोनों इकट्ठे हो जाते थे और एक साथ गंगा स्नान करते थे। वापसी में आप दोनों जंगल से कन्दमूल एकत्रित कर लेते थे। जिन्हें हीरागिरि जी अपने साथ ले जाकर उनसे फलाहार तैयार कर देते थे। मध्यान्ह के समय प्रभु जी भी वहां पहुंच जाते थे और दोनों एक साथ फलाहार किया करते थे और फलाहार के उपरान्त वे दोनों वहीं बैठकर कुछ समय तक योग चर्चा किया करते थे। उसके बाद प्रभु जी अपने स्थान को लौट जाते थे। उस पहाड़ के दूसरी ओर एक परिपूर्ण सिद्ध योगिराज भी रहा करते थे। उनका पावन नाम था–कृपालानन्द अवधूत। वे गम्भीर एवं शान्त प्रकृति के विरक्त महात्मा थे और हर समय आत्म स्वरूप में लीन रहा करते थे। वे दिगम्बर रहते थे और इतने अधिक निस्स्पृही थे कि अपने

फलाहार के लिये कन्दमूल की व्यवस्था तक नहीं करते थे। वे कई–कई दिन तक निराहार रहते थे। जब कभी उन्हें भोजन की आवश्यकता अनुभव होती थी तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से यह देख लेते थे कि–इस समय किस महात्मा के यहां फलाहार तैयार हो रहा है यह जानकर वे मनोजविता सिद्धि से तत्काल वहां उपस्थित होकर भोजन ग्रहण कर लेते थे।

वे हीरागिरी के कल्याण के उद्देश्य से कई दिन तक लगातार भोजन करने के बहाने उसके पास ही जाते रहे और उसके साथ फलाहार का सेवन कर लिया करते थे। हीरागिरी अहंकारी वृत्ति के थे। सम्भवतः योग के आधारभूत अंग यमों और नियमों की साधना न करने के कारण ही वर्षों से योग साधना करते हुए तथा योग में उच्च स्थिति प्राप्त कर लेने पर भी वे राग–द्वेष से मुक्त नहीं हो पाए थे। वे कृपालानन्द जी के योगेश्वर्य को देखकर उनसे ईर्ष्या रखते थे और उन्हें अपमानित करने की चेष्टा किया करते थे। जिससे बाद में उन्हें स्वयं ही नीचा देखना पड़ता था।

एक बार योगिराज कृपालानन्द जी अपनी एक अंग्रेज शिष्या के साथ वन में विचरण करते हुए वहाँ पधारे। उस समय प्रभु जी भी वहीं विराजमान थे। प्रभु जी ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। हीरागिरी जी ने भी सम्मान पूर्वक उन्हें आसन ग्रहण करने को कहा। वे बैठ गए। फिर कुछ समय तक योग चर्चा होती रही। चर्चा समाप्त होने पर हीरागिरी जी ने कृपालानन्द जी से व्यंगपूर्वक कहा–महाराज आप तो बड़े शक्ति सम्पन्न योगिराज हैं। हमारा एक छोटा सा काम तो कर दीजिए।

कृपालानन्द जी सहज शान्ति के साथ बोले।

निस्संकोच कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

हीरानन्द जी बोले–यहाँ से कुछ ही दूरी पर सामने की पहाड़ी पर हमारे ब्रह्मचारी (प्रभु जी) का आसन (पत्थर की शिला) है। यदि आप उसे यहाँ ला सकें तो ये ब्रह्मचारी जी भी यहीं मेरे साथ बैठकर भजन कर लिया करेंगे।

कृपालानन्द जी मुस्कराते हुए बोले–तुम्हारे ब्रह्मचारी जी हमें भी बहुत प्यारे लगते हैं। हम इनका काम अवश्य करेंगे। इतना कहकर वे अपनी अंग्रेज शिष्या से बोले–देवी ! हीरागिरी जिस शिला को यहाँ मंगाना चाहते हैं तुम उसे सामने के पहाड़ पर जाकर वहाँ से उठा लाओ। आज्ञा पाते ही वह योगिनी उठी। अपने गुरुदेव कृपालानन्द जी को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ती हुई पहाड़ी पर चढ़ गई और उसी स्थान पर रुकी जहाँ वह पत्थर की विशाल शिला पड़ी हुई थी। उसने मन ही मन अपने गुरुदेव को प्रणाम किया और उनका स्मरण करती हुई उस शिला पर पद्मासन लगाकर बैठ गयी। उसके बैठने की देरी थी कि शिला उठकर आकाश में चली गई और उस योगिनी के सहित आकाश मार्ग से चलती हुई हीरागिरी के स्थान पर पहुंच गई। शिला के धरती पर उतर जाने पर वह देवी भी शिला पर से उतर गई और अपने गुरुदेव को प्रणाम करके अपने आसन पर विराजमान हो गयीं।

कृपालानन्द जी हीरागिरी को सम्बोधित करते हुए बोले—हीरागिरी। यह रही तुम्हारी शिला। अब तुम इस शिला को सम्भालो और हम चलते हैं। इतना कहकर वे वहाँ से चले गये।

इस घटना के पश्चात् हीरागिरी के स्वभाव में कुछ परिवर्तन आ गया और उन्होंने कृपालानन्द जी से ईर्ष्याभाव त्याग दिया। श्री प्रभु जी तो प्रथम भेंट में ही अपनी अन्तर्दृष्टि से योगीराज कृपालानन्द जी की योग में पराकाष्ठा तथा उनके महान योगेश्चर्य को जान गए थे। अतः वे उनके प्रति अपने हृदय में बड़ा आदर भाव रखते थे। उनकी योगलीला को देखकर वे बड़े आह्लादित होते थे। साथ ही हीरागिरी की बच्चों की सी चपलता एवं कुटिलता पूर्ण चेष्टाओं को देखकर वे मन ही मन हंसा करते थे। उधर कृपालानन्द जी भी प्रभु जी से बड़ा स्नेह रखते थे। वे प्रायः मौन रहते थे, किसी से अधिक बातचीत नहीं करते थे, किन्तु एक बार प्रभु जी एकान्त में उनसे मिलने गए तो उन्होंने बड़े प्यार से उन्हें अपने पास बैठाया और उनके साथ घंटों तक योग चर्चा करते रहे।

* * *

आप जितना कुछ देंगे उसका हजार गुना होकर वह आपके पास लौट आयेगा। इसके लिये धीरज रखना आवश्यक है। हमारा जन्म देने के लिये है लेने के लिये नहीं। जो कुछ भी प्राप्त हो उसे उदारता पूर्वक खुशी-खुशी बाँटते चलो। सुखी जीवन का यही एक राजमार्ग है।

गायत्री की विशेषता

पं० केशीजी मिश्र

'गायत्री छन्दसामहम्' (गीता १०/३५)

"छन्दों में मैं गायत्री हूँ"—ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी विभूतियों के वर्णन में अर्जुन से कहा है। गायत्री शब्द अनेकार्थक है। गायत्री एक प्रकार के छन्द का नाम है और गायत्री एक मन्त्र विशेष का नाम है। व्युत्पत्ति के अनुसार—**'गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन सोच्यते।'** अर्थात् जिससे गाने वाले का त्राण होता है, उसे गायत्री कहा जाता है। इसी अर्थ में श्रीमद्देवी भागवत में कहा गया है कि—

न गायत्र्याः परो धर्मः न गायत्र्याः परं तपः।
न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः।।

अर्थात् गायत्री से बढ़कर न कोई धर्म और न कोई तप है। गायत्री के समान न कोई देवता और न गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र ही है।

यह मन्त्र गायत्री छन्द में है, जिसमें तीन पद होते हैं प्रत्येक पद आठ—आठ वर्णों का होता है। गायत्री मन्त्र की इतनी अधिक महिमा है कि इसे वेदमाता या विद्या की— ज्ञान—विज्ञान की जननी कहा जाता है। इसे मन्त्रराज या मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसी महिमा और श्रेष्ठता के कारण भारतीय ऋषियों ने इसे द्विजों—ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्यों के लिये अनिवार्य रूप से नित्य जपनीय माना था और यज्ञोपवीत के साथ इसका अविच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित किया था। प्रतिदिन तीनों समय इसका ध्यान और जप अनिवार्य ठहराया गया।

पूर्वाह्न में गायत्री ऋग्वेदमय है और सृष्टिकाल में ब्रह्मा भी ऋग्वेदमय माने गये हैं। ऋग्वेद में रजोगुण की प्रधानता है। इसका वर्ण (रंग) जपा कुसुम के समान बताया है। मध्याह्नकाल में गायत्री मन्त्र यजुर्वेद स्वरूप सुवर्ण रंग का सत्वगुण—प्रधान माना गया; क्योंकि इससे विश्व का पालन—पोषण होता है। अपराह्न में गायत्री मन्त्र सामवेदमय है। सामवेद को तमोगुण—प्रधान माना गया है और संहार—काल में रुद्र को सामवेद—स्वरूप माना गया है। यही कारण है कि त्रिकाल—सन्ध्या में गायत्री मन्त्र का ध्यान क्रमशः ब्रह्माणी, वैष्णवी और रुद्राणी रूप की किशोरी, युवती और प्रौढ़ा— (किंवा वृद्धारूप) में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, सृष्टि, संवर्धन, संहार—ये त्रिविध कर्म गायत्रीमन्त्र में सन्निहित अपार शक्ति के बल पर होते हैं।

वेदों में अनेक गुप्त एवं प्रकट गायत्रियाँ हैं, पर सौम्य गायत्री के विशेष साक्षात्कर्ता हैं—विश्वामित्र ऋषि जिनका अर्थ है कि विश्व के मित्र या लोकहितैषी, लोक—कल्याणकर्ता। विश्वामित्र ने इसी मन्त्र के बलपर ही क्षत्रिय होते हुए भी ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया था और इतनी शक्ति उपार्जित की थी कि वे स्वयं सृष्टि करने में समर्थ हो गये थे। अतएव गायत्री मन्त्र की सम्यक् उपासना से सृष्टि का कल्याण सम्भव है, जन—जन का उत्कर्ष सम्भव है, विश्व में

शान्ति एवं सुव्यवस्था सम्भव है। प्राणियों में सद्भावना की वृद्धि हो सकती है। इस पृथ्वी पर शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। गायत्री की महिमा अद्वितीय है।

यहाँ मुख्यतः इसके सारलार्थ बताने की चेष्टा की जायेगी, जिससे इस मन्त्र के प्रति हमारी अभिरुचि बढ़े, आत्मीयता आवे और सम्यक्‌रूपेण हमारी धी प्रणोदित हो सके जिससे इस परमाणु–युग में भी विश्व में शान्ति बनी रह सके, प्रजा का तन–धन सुरक्षित रह सके। गायत्री में सद्भावना बढ़ाने वाली बुद्धि को प्रेरणा देने की अपूर्व शक्ति है।

यह द्वि–द्वादश अक्षरवाला मन्त्र गायत्री छन्द में है–'**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।**' इसका अन्वय मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है और उसी के अनुकूल अर्थ किया जाता है। प्रथम अन्वय है–**तत्सवितुः देवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि।** तत्सवितुः (तस्य सवितुः) देवस्य (उस सविता देव के) वरेण्यं भर्गः (कमनीय तेज का) धीमहि (हम ध्यान करते हैं)। व्युत्पत्ति के अनुसार 'सविता' शब्द का अर्थ है जन्म देने वाला। वेद में 'सविता' शब्द सूर्य के लिये आया है और अखिल विश्व के जन्म दाता के लिये एवं ब्रह्म अथवा परमपिता के लिये भी अर्थात् सृष्टिकर्ता परमेश्वर के लिये भी। सौर–परिवार में पृथ्वी–प्रभृति ग्रहों उपग्रहों के लिये सूर्य का वही स्थान है जो अखण्ड त्रिलोकी के लिये सृष्टिकर्ता परमेश्वर का है।

सूर्य जन्मदाता है पृथ्वी और चन्द्रमा के। सूर्य ने ही अपनी आकर्षण–शक्ति के बल पर पृथ्वी को अपने स्थान पर बनाये रखा है अपनी आकर्षण शक्ति के आधार पर सूर्य पृथ्वी को अपने चतुर्दिक प्रदक्षिणा करने को बाध्य करते हैं सूर्य ही पृथ्वी को शस्यश्यामला बनाते हैं, जीव जन्तुओं से परिपूर्ण रखते हैं। दूसरे शब्दों में इस पृथ्वी पर सृष्टि के मुख्य कारण सूर्य ही हैं। इसलिये वेदों में सूर्य को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा है, सविता कहा है, जन्मदाता ही नहीं, धर्ता और संहरता भी कहा गया है। सूर्य ही द्वादश आदित्य हैं। सूर्य ही सांख्यतम के चौबीस तत्वों के बीज हैं; मानो गायत्री मन्त्र के अक्षरों में द्वादश आदित्य द्विगुणित होकर हैं। गायत्री मन्त्र का प्रत्येक अक्षर एक–एक तत्व का बीज–स्वरूप है।

सविता भर्गयुक्त है। भर्ग द्विविध है, कल्याणात्मक और संहारात्मक–कमनीय तथा वर्जनीय। जो भद्र है, शिव है, जो कल्याणप्रद है वही कमनीय है, वरेण्य है। जो अभद्र है, अशिव है, संहारात्मक है वही वर्जनीय है, त्याज्य है।

'भर्गः' शब्द भ्रस्ज् धातु से बना है और 'भर्ज' धातु से भी बनता है। 'भर्ज' धातु से बनने पर अर्थ होगा–भून डालने वाला तेज, जला डालने वाला तेज।

साधारण शक्ति भी दुधारी तलवार की तरह काम करती है, वह लाभ पहुँचाती है और हानि भी। सूर्य में सृष्टि, संरक्षण और संवर्धन करने वाला तेज है और संहार करने वाला भी। जल–शोषण कर वृष्टि कराने वाला तेज है तथा लू से सबको झुलस देने वाला तेज भी। हमारे लिये वरेण्य तेज वही है, जो हमारा कल्याण करे, जो हमारी सम्पत्तियों की तथा स्वास्थ्य की वृद्धि करे, जो हममें सात्विक दैवी तेज का उत्कर्ष करे, जो तेज हमारे अन्तःस्थ षट्‌रिपुओं का,

हमारी आसुरी प्रवृत्ति का संहार करे। अतः हम वरेण्य भर्ग का आवाहन करते हैं, वरेण्य भर्ग का ही ध्यान करते हैं, वरेण्य भर्ग की ही अवतारणा अपने में चाहते हैं।

'देवस्य' अर्थात् देव का, असुर का नहीं। तेज दोनों में होते हैं, देव में और असुर में भी। देव का तेज है ज्योतित करने वाला, प्रकाशित करने वाला, अव्यक्त को व्यक्त करने वाला, संकुचित को प्रस्फुटित करने वाला। वेद के अनुसार देवतत्व और शक्तितत्व पर्यायवाचक हैं। असुर का तेज है उच्छृंखलता फैलाने वाला, अव्यवस्था फैलाने वाला, अन्धकार फैलाने वाला, अंधेर मचाने वाला, अशान्ति कराने वाला, अतएव हम सच्चिदानन्द देव के तेज का आवाहन करते हैं ताकि हममें ज्ञान और आनन्द की वृद्धि हो। आसुरी तेज से हम सदैव दूर ही रहने का प्रयत्न करते हैं।

'धीमहि' बहुवचनान्त है; अर्थ है 'हम ध्यान करते हैं'। व्याकरण 'अपने' लिये एक वचन के स्थान पर बहुवचन के प्रयोग के लिये राजी है, अनुमति देता है। इसलिये 'ध्यान करता हूँ' के स्थान पर 'ध्यान करते हैं' शुद्ध माना जाता है। ध्यान (धी आ (हहा) न) का अर्थ है धीमें लाना, प्रवेश कराना, स्थान ग्रहण कराना।

अतएव **'तत्सवितुःदेवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि'** का सरलार्थ हुआ—उस सविता देवता के कमनीय (वाञ्छनीय) तेज का हम ध्यान करते हैं। 'सविता देवता' पृथ्वी और पृथ्वी पर के लता–द्रुम और जीव जन्तुओं एवं जड़–चेतन के उत्पन्न करने वाले सूर्य के अर्थ में सूर्य के सृष्टा तथा नियन्ता एवं जगत्–सृष्टा परमदेव के अर्थ में भी प्रयुक्त माना जा सकता है।

इतने अंश का अन्वय इस प्रकार भी किया जा सकता है—**'सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि'** अर्थात् सविता देवता के उस वरेण्य भर्ग का हम ध्यान करते हैं। इस अन्वय में 'तत्' शब्द 'भर्गः' का विशेषण बन जाता है। 'तत्सवितुः' एक समस्त पद नहीं रह जाता है। दोनों अन्वयों में सिर्फ 'तत्' शब्द के स्थान के कारण अर्थों में अन्तर आ जाता है। प्रथम अन्वय में 'तस्य सवितु' के स्थान के कारण अर्थों में अन्तर आ जाता है। प्रथम अन्वय में 'तत्', 'सवितुः' से सम्बद्ध हो जाता है। दूसरे अन्वय में 'तत्', 'वरेण्य भर्गः' का विशेषण बन जाता है और द्वितीया विभक्ति का (नपुंसक लिंग का) एक वचन रूप ग्रहण कर लेता है। दूसरे अन्वय का अर्थ विशेष काव्यात्मक हो जाता है और मन्त्र के तीसरे पद 'यो नः धियः प्रचोदयात्' के यः (वरेण्यं भर्गः) के साथ अन्वित हो जाता है।

तृतीय पद का सरलार्थ है 'यः' (जो सविता देवता का वरेण्य भर्ग) 'नः' (हमारी) 'धियः' (ब्रह्मज्ञान हृदयंगम करने वाली बुद्धियों को) प्रचोदयात् (प्रेरित करे)।

'धी' से अभिप्राय उस बुद्धि से है जो इहलौकिक सफलता के साथ–साथ पारलौकिक सिद्धि भी प्राप्त करा दे, ब्रह्मोपलब्धि में सहायिका हो, अर्थात् चारों पुरुषार्थों (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) की प्राप्ति करा दे। धी में आना ही ध्यान है। हम वरेण्य भर्ग का ध्यान करते हैं, आह्वान करते हैं कि धी में आकर स्थान ग्रहण कर उसे प्रेरित करे, जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये

प्रचोदित करे। हमारे मन को मोक्ष की ओर ले चले, ईप्सित दिशा में ले चले, शिवमार्ग पर ले चले, उस ओर ले चले जहाँ हमारा कल्याण हो, वहाँ ले चले जहाँ से पुनः इस संसार में नहीं आना पड़े।

वेद ने पृथ्वी के प्रसंग में सूर्य को सविता निश्चित रूप से माना है और मुक्त कण्ठ से उद्घोष किया है–

'सूर्य' आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

अर्थात् सूर्य स्थावर और जंगम दोनों के आत्मा है। अतः ऋषियों ने सूर्य मण्डल मध्यवर्ती परमात्मा का, कोटि–कोटि सूर्य के सविता का, सृष्टि–पालन–संहार–कर्ता का, नियन्त्रण, प्रेरण, संचालन–कर्ता का, सर्वोपरि सवित का दर्शन किया और गायत्रीमन्त्र द्वारा प्रतिदिन उनके वरेण्य भर्ग का नियमित रूप से ध्यान कर अनुपम लाभ उठाया है। हमें उनके पद्चिन्हों पर चलकर गायत्री की शास्त्र–निर्दिष्ट उपासना करनी चाहिये।

गायत्री–ध्यानादि के मतभेदों दूर करने तथा तत्सम्बन्धी पूरी जानकारी के लिये आचार्य शंकर रचित गायत्र्यनुष्ठानपद्धति, देवीभागवत ९–१२, मनु, योगियाग्वल्क्य, काण्वादि २० मुख्य स्मृतियों, गायत्रीतन्त्र, पचांग, संध्याभाष्यसमुच्चय, शारदातिलकादि तन्त्रों को अवश्य पढना चाहिये।

❊ ❊ ❊

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्व पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनःपुनः।।

–चाणक्यनीति दर्पण

धन, मित्र, पत्नी और यह जगत (सम्पदा, देश, राज्य आदि) तो बार–बार मिल सकते हैं पर मनुष्य शरीर बार–बार नहीं मिलता। बल्कि अनेक योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि मिलती है। अतः इस दुर्लभ मनुष्य शरीर का सदुपयोग कर शुभ कर्म और धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए।

स्वस्तिक आसन

प्रथम साधारण स्थिति में बैठ जाओ और अपने बायें पैर के पंजे को पकड करके पिंडली और जंघा के बीच में अपने दोनों पैरों के पंजों को दबायें और समकाय शिरोग्रीव हो करके दोनों हाथों को सिद्धासन की तरह दबा करके मेरूदण्ड को सीधा करके बैठ जायें और दृढता से अभ्यास करें। स्वास्तिक आसन का फल भी सिद्धासन के समान ही है।

समयः—सरलता पूर्वक २ मिनट से आरम्भ करना चाहिए व धीरे—धीरे रोजाना २—२ मिनट बढ़ाते हुए घंटों तक ले जाना चाहिए।

लाभः—स्वास्तिक आसन ध्यानाभ्यास के लिए परम उपयोगी आसन है। इस आसन में बैठने पर सुषुम्ना की गति अपने आप हो जाती है। मन की एकाग्रता स्वतः ही जाग्रत हो जाती है। यह सिद्धासन की अपेक्षा अधिक सरल है। इस आसन को गृहस्थी, विरक्त, सन्यासी, महात्मा, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ सभी सरलता से कर सकते हैं।

जानुशिरासन

यह आसन महामुद्रा की प्रतिकृति है। महामुद्रा में ठोडी छाती में लगा कर जालन्धर बन्ध साथ में लगाया जाता है, और साथ में प्राणायाम की भी विधि महामुद्रा के साथ साथ है, महामुदा बहुत ही लाभकारी मुद्रा है, किन्तु क्योंकि उसका वर्णन सभी योगाचार्यों ने मुद्राओं में किया है। अतः उसका वर्णन पूर्ण विधि से मुद्राओं में ही किया जायेगा।

विधिः—सम सूत्रता में बैठ जाइये। सीधे बैठकर अपने एक पैर को अपनी जंघा के साथ सटा कर उसकी एडी योनिस्थान लिंग नाल के नीचे लगाये रखिये, दूसरे पैर को सामने की ओर लम्बा फैलाकर उस पैर का अंगुठा या सम्भव हो सके तो पूरा पंजा ही पकड़ लीजिये, फैला हुआ पैर जमीन के साथ बिल्कुल सटा रहे, इसके बाद पैर के पंजे को ऊपर की ओर तनाव करके साथ खेंचते हुए अपना मस्तक घुटने पर लगा दें। इसी प्रकार इस पैर को बदल कर पहले पैर की तरह जंघा के जमाकर व दूसरे पैर को फैलाकर उसके भी अँगुठे या पंजे को पकड़ कर तनाव के साथ ऊपर की ओर खेंचते हुए अपने मस्तक को घुटने पर लगा दें, इसी का नाम जानुशिरासन है, दोनों पैरों को बदल—बदल कर करना चाहिये, जितना पहले पैर से किया हो उतना ही दूसरे पैर से भी जरूर करें तभी आसन पूर्ण होगा।

करने का समयः—इस आसन के करने में हर व्यक्ति को पहले पहले कुछ कठिनता होती है। किन्तु अभ्यास से धीरे—धीरे अवश्य ही बन जायेगा। प्रथमाभ्यास में इस आसन को १५ या २० सैकेण्ड से शुरू करें व प्रतिदिन ४ या ५ सैकण्ड बढ़ाते हुए २ मिनट तक बढ़ा लें, तो उत्तम रहेगा। शरीर के बलाबल को देख कर शनैः—शनैः और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

लाभः—शरीर में दृढ़ता देता है। वात रोग नाशक है, यकृत एवं प्लीहा की बीमारियों को पूरा—पूरा लाभ पहुंचाता है। आँतों को सबल बनाता है। कोष्ठ बद्धता दूर होकर जठराग्नि बढ़ती है, भूख खूब लगती है। यकृत पर पूरा—पूरा प्रभाव पड़ने पर रक्त शुद्ध होता है। श्वास को लाभ प्रद है। वीर्य रक्षा के लिए श्रेयस्कर एवं स्तम्भक है।

❊ ❊ ❊

बहु रूप में प्रकाशित एक सत्ता

—स्वामी विवेकानन्द—

हमने देखा है, वैराग्य अथवा त्याग ही इन समस्त विभिन्न योगों की मूल भित्ति है। कर्मी कर्मफल त्याग करते हैं। भक्त उन सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी प्रेमस्वरूप के लिए समग्र क्षुद्र क्षुद्र प्रेम का त्याग करते हैं; योगी जो कुछ अनुभव करते हैं, उनकी जो कुछ अभिज्ञता है, समुदय परित्याग करते हैं, क्योंकि उनके योगशास्त्र की शिक्षा यही है कि समुदय प्रकृति यद्यपि आत्मा के भोग और उसकी अभिज्ञता के लिए है, तथा वह अन्त में उन्हें समझा देती है कि वे प्रकृति में अवस्थित नहीं हैं, किन्तु प्रकृति से नित्य स्वतन्त्र हैं। ज्ञानी सब कुछ त्याग करते हैं, क्योंकि ज्ञानशास्त्र का सिद्धान्त यह है कि भूत, भविष्यत्, वर्तमान किसी काल में भी प्रकृति का अस्तित्व नहीं है। हमने यह भी देखा है कि इन सब उच्चतर विषयों में 'इससे क्या लाभ है' यह प्रश्न किया ही नहीं जा सकता। लाभ–अलाभ के प्रश्न की जिज्ञासा ही यहाँ अस्वाभाविक है, और यदि यह प्रश्न जिज्ञासित ही हो फिर भी हम इस प्रश्न का उत्तम रूप से विश्लेषण करके क्या पाते हैं? लाभ का अर्थ क्या है?—सुख—जो वस्तु लोगों की सांसारिक अवस्था की उन्नति साधित नहीं करती, जिससे उनके सुख की वृद्धि नहीं होती, उसकी अपेक्षा जिससे उन्हें अधिक सुख प्राप्त होता है, उसमें ही उनका अधिक लाभ है—अधिक हित है। समग्र विज्ञान इसी एक लक्ष्य–साधन में अर्थात् मनुष्यजाति को सुखी करने के लिए यत्न कर रहा है, तथा जिससे अधिक परिमाण में सुख उत्पन्न होता है, मनुष्य उसे ही ग्रहण करके, जिसमें अल्प सुख है उसे त्याग देता है। हमने देखा है, सुख या तो देह में अथवा मन में अथवा आत्मा में अवस्थित है। पशुओं का एवं पशुप्राय अनुन्नत मनुष्यगण का समस्त सुख देह में है। भूख से आर्त एक कुत्ता अथवा बाघ जिस प्रकार तृप्ति के साथ आहार करता है, कोई मनुष्य उस प्रकार नहीं कर सकता। अतः कुत्ते अथवा बाघ के सुख का आदर्श सम्पूर्ण रूप से देहगत है। मनुष्य में हम कुछ उच्चतर का सुख देखते हैं—मनुष्य ज्ञान की आलोचना से सुखी होता है। सर्वोच्च स्तर का सुख ज्ञानीगण का है—वे आत्मानन्द में विभोर रहते हैं। आत्मा ही उनके सुख का एकमात्र उपकरण है। अतएव ज्ञानी के पक्ष में यह आत्मज्ञान ही परम लाभ अथवा हित है; क्योंकि इससे ही वे परम सुख प्राप्त करते हैं। जड़ विषयसमूह अथवा इन्द्रियचरितार्थता उनके लिए सर्वोच्च लाभ का विषय हो नहीं सकता, क्योंकि वे ज्ञान में जिस प्रकार सुख प्राप्त करते हैं, विषय समूह अथवा इन्द्रियभोग से उस प्रकार नहीं पाते। वास्तव में ज्ञान ही उनका एकमात्र लक्ष्य है। हम जितने प्रकार के सुख के विषयों से परिचित हैं, उनमें से आत्मज्ञान ही सर्वोच्च सुख है। जो अज्ञान में कार्य किया करते हैं, वे "देवगण के पशुओं के सदृश हैं।" यहाँ देव अर्थ में ज्ञानी व्यक्ति को मानना होगा। जो सब व्यक्ति यन्त्रवत् कार्य अथवा परिश्रम करते रहते हैं, वे वास्तव में जीवन का उपभोग नहीं करते; ज्ञानी व्यक्ति ही जीवन का उपभोग करते हैं। एक धनी व्यक्ति ने, मान लीजिये, एक लाख रुपये व्यय करके एक चित्र मोल लिया, किन्तु जो शिल्प समझ सकता है, वही उसका उपभोग करेगा। क्रेता यदि शिल्पज्ञान शून्य हो, तो उसके लिए वह चित्र निरर्थक है, वह केवल उसका अधिकारी मात्र है। समग्र जगत् में ज्ञानी व्यक्ति ही जगत् का सुख भोग करते हैं। अज्ञानी व्यक्ति कभी सुख भोग नहीं कर सकता, उसे अज्ञात अवस्था में भी दूसरे के लिए परिश्रम करना होता है।"

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

191-उमाशंकर भारद्वाज
B-65 बालाजीपुरम् अलबतिया रोड,
शाहगंज आगरा (उ०प्र०) 282010

संग सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्युक्तं न शक्यते। स सद्भिः सह कर्तव्यःसतां संगो हि भेषजम्।
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः। मुमुक्षां प्रति तत्कार्य सैव तस्यापि भेषजम्।

(मार्कण्डेय पुराण ३७/२३-२४)

संग (आसक्ति) का सब प्रकार से त्याग करना चाहिये, किन्तु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषों का संग करना चाहिये। क्योंकि सत्पुरुषों का संग ही उसकी औषधि है। कामना को सर्वथा छोड़ देना चाहिये, परन्तु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मुक्ति की इच्छा) के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामना को मिटाने की दवा है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, शाहगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक-आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा